अथ

जैमिनिसूत्र.

ज्योतिष.

काशीस्थप्रधानपाठशालापरीक्षोत्तीर्ण
पण्डितरामस्वरूपविरचितभाषाटीका
तथा विषमपदटिप्पणीसहित

जिसे

पण्डितहरिप्रसादभगीरथजीने

पण्डितरघुवंशशर्मासे शुद्धकराय

मुम्बईमें
"गणपतकृष्णाजी" के छापखानेमें छप-
वाकर प्रसिद्ध किया

सं. १९६३.

भूमिका.

प्रिय आस्तिकगण ! यद्यपि लोकोपकारके निमित्त विद्वज्जन पुरुषोंने बृहत्पाराशरी–बृहज्जातक आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, परन्तु जैमिनिमुनिप्रणीत यह सूत्र सर्वोपरि प्रामाणिक और यथार्थफलज्ञापक माने जातेहैं, और इनकी कठिनता भी सर्वत्र प्रसिद्ध है,परन्तु इस अलभ्य ग्रन्थका सर्वसाधारणको बोध होनेके निमित्त परोपकारपरायण पण्डित श्रीहरिप्रसादभगीरथजीने भाषाटीका करनेके अर्थ मुझे लिखा और मैंनेभी इस ग्रन्थका भाषा होनेसे लोकोपकार समझकर उक्त महाशयकी प्रार्थनाको स्वीकार करा, और सरल रीतिसे भाषाटीका तथा विषमपदटिप्पणी बनाकर, उक्त महाशयको ही इसके सम्पूर्ण अधिकार दिये हैं, यहाँ यह भी विचारनेका विषय है कि–अनेक पुरुष यह कहतेहैं कि–जैमिनिसूत्र ग्रन्थके चार चार अध्याय और मुम्बईकी संस्कृत टीकासहित पुस्तकमें दो अध्याय सटीक और दो अध्याय मूलमात्र छपे हैं परन्तु मेरी बुद्धिमें यह बात आती है कि–जैमिनिमुनिरचित ... ही अध्याय हैं, क्योंकि ग्रन्थकार द्वितीय अध्यायके ... लिखतेहैं कि–'सिद्धमन्यत्' अन्य विषय ... सिद्ध हैं,इस ग्रन्थकारके सूत्रोंसे दो अध्यायोंकरकेही ग्रन्थकी समाप्तिप्रतीति होती है, और इसकारणही नीलकण्ठाचार्यने दो अध्यायोंकोही संस्कृत टीका रची है. और इसी अनुरोधसे हमने भी दो अध्यायकी ही भाषा टीका रची है, अन्य दो मूल मात्र ही अन्तिम लगादिये हैं. आशा है कि महाशयोंको अधिक विदित होगा वे मेरे ऊपर अनुग्रह क्षमा करेंगे, तथा इस ग्रन्थमेंभी जो मनुष्य धर्म्मानुसार होगी उसको क्षमाकर मुझे सूचित करेंगे क्योंकि—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः ॥

पण्डितहरिप्रसाद भगीरथ.

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ जैमिनिसूत्रम् ।

भाषानुवादसमलङ्कृतम् ।



"सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्री हरिहरविधिभिः सेवि-
तानन्ददात्री नानातन्त्रोक्तमार्गैर्मुनिभिरपि
धिया भालचन्द्रोज्वलाङ्गी। आरक्ताभत्रिने-
त्रा शिवशवनिलया राजराजेश्वरी सा वाचं नो
ह्यातनोतु प्रतिपदकठिने जैमिनेः सूत्रसंघे।१।"

यत्कृपापूरपूतात्मा पङ्गुरेति नगोपरि ।
मूको वाचालङ्कृतः स्यात्सुराचार्य्यो यथा दिवि १
पारावारपरम्पारं निष्णातोऽपि प्रयाति वै ।
नमामि गणधीशं र्निविघ्नं कार्य्यसिद्धये ॥ २ ॥

अवतरणिका——इस संसारमें सबही प्राणी दुःखकी [नि]वृत्ति और सुखकी प्राप्तिकी इच्छा करतेहैं और वह दुःखनि[वृ]त्ति तथा सुखकी प्राप्ति पूर्वजन्ममें कियेहुए अशुभकर्मों[की] शान्ति और इस जन्ममें शुभकर्मोंका आचरण किये [विना] कदापि नहीं होसक्ती इसीकारण आर्त्तत्राण परमकृपालु [जै]मिनि मुनि पूर्वजन्मकर्मोंको सूचित करनेवाले इस जात[कशा]स्त्रकी निर्विघ्नसमाप्तिकी इच्छासे परमपूज्य पार्वतीपति [शि]वजीमहाराजका प्रणामरूप मङ्गलाचरण करतेहुए ग्र[न्थ]का आरम्भ करते हैं ॥

इस सूत्रके नीलकण्ठाचार्य्यने दो अर्थ लिखे हैं सं
दिखातेहैं—

उपदेशं व्याख्यास्यामः। १।

अर्थ—(उ) इस पदके ईश जो महादेव सो हुए (उप
देश) तिन महादेवजीको प्रणाम करतेहैं। द्वितीय अर्थ-
जैमिनिमुनि प्रतिज्ञा करतेहैं कि अब पूर्वजन्मोंके शुभाशु
कर्म्मोंको सूचित करनेवाले उपदेश (जातकशास्त्र) के
कहेंगे ॥ १ ॥

जातकशास्त्रके तौ पाराशरीआदि अनेक ग्रन्थ हैं कि
इस ग्रन्थकी रचना करनेका क्या प्रयोजन है तिसका समा
धान करते हैं कि इसमें अन्य जातकशास्त्रोंकी अपेक्षा राशि
दृष्टि विलक्षण है सो दिखाते हैं—

अभिपश्यन्त्यृक्षाणि। २।

पार्श्वभे च। ३।

अर्थ—इस ग्रन्थमें राशिमें अपनें सम्मुख और। तं
शियोंको देखते हैं. अर्थात् चर राशि अपने सम्मुख औ
भागमें स्थित अष्टम८, पञ्चम और ग्यारहवें११ राशिक
है। और स्थिरराशि अपनेसे पष्ठ ६, तृतीय ३,
९, राशिको देखता है। तथा द्विःस्वभावराशि अपने
७, चतुर्थ४, और दशम१०, राशिको देखता है. इ
वृद्धकारिकाका प्रमाणभी है "चरं धनम्विनाद्रीजे

× मेष, कर्क, तुला, मकर इन राशियोंको चर राशि कहते
+ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ, इन राशियोंको स्थिर कहते हैं। मि
थुन, कन्या, धन, मीन इन राशियोंको द्विस्वभाव कहते हैं।

स्थिरमन्त्यंविना चरम्। युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्यतीत्ययमागमः" सोई दूसरे आचार्यनेभी लिखा है—"चरानागवाणेशराशीन् स्वतो वै स्थिराः षट्तृतीयाङ्कराशीन् क्रमेण। स्वतः शैलमं वेदभं पङ्क्तिमश्च क्रमाद्वि-स्वभावाः प्रपश्यन्ति पूर्णम्" चरराशि अपनेसे नाग कहिये अष्टम ८ बाण कहिये पञ्चम ५ ईश कहिये एकादश ११ वें राशिको देखता है। और स्थिरराशि अपनेसे षष्ठ ६, तृतीय, और अङ्क कहिये नवम ९ को देखता है और द्विस्वभाव राशि अपनेसे शैल कहिये सप्तम ७, वेद कहिये चतुर्थ४और पङ्क्ति कहिये दशम १० राशिको देखता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अब राशियोंके द्वारा ग्रहोंकी दृष्टि लिखते हैं:—

तन्निष्ठाश्च तद्वत्। ४।

अर्थ—पूर्वोक्त राशियों (चर–स्थिर–द्विस्वभाव) में स्थित ग्रहभी पूर्वोक्त स्थानोंमें स्थित ग्रहोंको देखतेहैं अर्थात् चर राशिमें स्थित ग्रह अपनेसे ८।५।११ राशिपर स्थित ग्रहको देखते हैं। और स्थिरराशिमें स्थित ग्रह अपनेसे ६।३।९ राशिपर स्थित ग्रहको देखतेहैं। तथा द्विस्वभावराशिमें स्थित ग्रह अपनेसे ७।४।१० राशिपर स्थित ग्रहको देखते हैं। इस विषयमें वृद्धकारिकाका प्रमाण देते हैं—"चरस्थं स्थिरगः पश्येत् स्थिरस्थं चरराशिगः। उभयगो निकटस्थं विना ग्रहम्"—चरराशिमें स्थित ग्रह स्थिर राशिमें स्थित ग्रहको देखताहै और स्थिरराशि-

में स्थित ग्रह चरराशिमें स्थित ग्रहको देखताहै तथा द्विस्वभाव राशिमें स्थित ग्रह उभयस्थ ग्रहोंको देखता है; परन्तु समीपस्थित ग्रहको नहीं ॥ ४ ॥

प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें "शुभार्गले धनसमृद्धिः" इत्यादि सूत्रोंमें जो अर्गलापद है उसका स्वरूप दिखातेहैं।

दारभाग्यशूलस्थार्गलानिध्यातुः । ५ ।

अर्थ—जिस राशिका विचार करना हो उस राशिके देखतेहुये ग्रहसे दार कहिये चतुर्थ ४ भाग्य कहिये द्वितीय २ शूल कहिये एकादश ११ वें स्थानमें स्थित जो जो ग्रह हों वह उक्तराशिको देखनेवाले ग्रहोंकि अर्गला कहलाते हैं और कर्त्तरीभी कहलातेहैं। इस ग्रन्थमें राशि और भाव ी संख्याका जानना 'क.ट.प.य' आदि अक्षरोंकरके जैमिनिमुनिको अभीट है सोई दिखाते हैं इस विषयमें प्राचीनोंकी कारिका लिखतेहैं—"क ट.प.य.वर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः । नञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम्" क.ट.प.य. आदि क्ष पर्य्यन्त अक्षरोंसे

+ दारभाग्यशूलस्थार्गला इस सूत्रमें वास्तवमें । दारभाग्यशूलस्था अर्गला । ऐसा होना चाहिये क्योंकि स्था के आगेकी विसर्गोंकि अर्गलाके अकारको मानकर लोप होरहा है और जहाँ लोप होताहै वहा "पूर्वत्रासिद्धम्" इस सूत्रके बलसे सन्धि नहीं होती है परन्तु यह आर्ष सूत्र हैं "छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति" इस व्याकरण सूत्रके अ... आर्षसूत्र वेदवत् माने जातेहैं और वेदमें "छन्दसि दृष्टानुविधिः" सूत्रके अनुसार ऊपरोक्त स्थलोंमें सन्धि होसक्ती है ॥ ११

संख्या ग्रहण करै । और नकार अकार या स्वर हों तौ शून्यका ग्रहण करै ॥ १ ॥ और जहाँ बारहसे अधिक संख्या प्राप्त हो उसमें बारहका भाग देय जो शेष रहै वही संख्या राशि और भावका बोध कराती है. इस विषयका उदाहरण इसी सूत्रमें दिखलाते हैं. जैसे कि—यहाँ 'दार' पद है इसमें (दा) वर्णसे बोध हुआ आठ ८ का और रकारसे बोध हुआ दो २ का इन दोनों अङ्कोंको ("अङ्कानां वामतो गतिः" अङ्कोंकी वामभागसे गति होती है) इसके अनुसार लिखा तो हुए २८ अट्ठाईस. यह संख्या बारहसे अधिक है इसकारण इसमें बारहका भाग दिया तब शेष बचे चार ४ यही भावसंख्या है इसीकारण सूत्रार्थमें दारपदसे चार ४ का ग्रहण किया है. यही प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ॥ वर्णोंसे संख्या जाननेका क्रम चक्रमें लिखते हैं ॥

(संख्याचक्र)

क	१	ट	१	प	१	य	१
ख	२	ठ	२	फ	२	र	२
ग	३	ड	३	ब	३	ल	३
घ	४	ढ	४	भ	४	व	४
ङ	५	ण	५	म	५	श	५
च	६	त	६	....		प	६
छ	७	थ	७	....		स	७
ज	८	द	८	....		ह	८
झ	९	ध	९	....		क्ष	९
ञ	०	न	०	....		०	०

ऊपरके सूत्रमें जो अर्गला कही सो शुभग्रहोंके योगमें भी होती है और पापग्रहोंके योगमें भी होतीहै॥ अब केवल पापग्रहोंके योगसे होनेवाली अर्गलाको दिखातेहैं—

× पूर्णचन्द्रमा, शुभग्रहयुक्त बुध, केवल बुध, बृहस्पति और शुक्र यह शुभग्रह हैं । + सूर्य, क्षीण चन्द्रमा, मंगल, पापग्रहयुक्त बुध शनि राहु, और केतु यह पापग्रह हैं ।

×कामस्था तु भूयसा पापानाम् । ६ ।

अर्थ—जिस राशिके फलका विचार करना हो उस राशिसे तृतीय स्थानमें दोसे अधिक तीन आदि पापग्रह हों तो वह पूर्वोक्त राशिको देखनेवाले ग्रहोंके अर्गलासंज्ञक होतेहैं ६

अब "दारभाग्ये"त्यादि सूत्रमें कहीहुई अर्गलासंज्ञाका बाधक सूत्र कहतेहैं—

रिष्फनीचकामस्था विरोधिनः । ७ ।

अर्थ—जिस राशिका विचार करना हो उसराशिको देखनेवाले ग्रहसे रिष्फ कहिये दशम १० नीच कहिये द्वादश १२ काम कहिये तृतीय ३ स्थानमें जो ग्रह स्थित हों तो पहले "दारभा"ग्येत्यादिसूत्रमें कहेहुए चतुर्थ ४, द्वितीय २ और एकादश ११ स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अर्गलासंज्ञा नहीं होगी. अर्थात् जब दशमस्थानमें कोई ग्रह नहीं होगा तबहीं चतुर्थस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गलासंज्ञा होगी और जब द्वादशस्थानमें कोई ग्रह नहीं होगा तबहीं द्वितीयस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गला संज्ञा होगी तथा जब तृतीय स्थानमें कोई ग्रह

× यद्यपि "दारभाग्येत्यादि" पञ्चमसूत्रके साथ "कामस्थातु भूयसा पापानाम्" इस सूत्रकोभी पढ़ देनेसे अर्गलासंज्ञा सिद्ध होजाती परन्तु "दारभाग्ये" त्यादिमें कहीहुई अर्गलासंज्ञाका बाधक सूत्र आगे कहा है उस सूत्रसे "कामस्थे"त्यादि सूत्रकाभी बाध होजाता इस कारण इसको अलग पढ़ा है ॥ + कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि इस सूत्रमें जो "भूयसा" पद पढ़ा है उसका यह अर्थ है कि-बहुत पापग्रहोंमें जो बलवान् हो उसके योगसे अर्गलासंज्ञा होतीहै. यह कहना ठीक नहीं. है क्योंकि अक्षरोंसे ऐसा अर्थ प्रतीत नहीं होताहै × इस सूत्रमें जो "पापानाम्" यह बहुवचनान्त पद पढा है यह प्रतीत होता है कि तीनसे कम दो या एक पापग्रहके अर्गला नहीं होती है ॥

नहीं होगा तबहीं एकादशस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गला संज्ञा होगी अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

दारभाग्येत्यादिके बाधक रिष्फेत्यादिकाभी बाधक सूत्र कहतेहैं—

न न्यूना विबलाश्च । ८ ।

अर्थ—यदि अर्गलाके प्रतिबन्धक दशमस्थानस्थित आदि ग्रहोंकी अल्प संख्या हो और अर्गलाकारक ग्रहोंकी संख्या अधिक है अर्थात् अर्गलाकारक ग्रह तौ दो हों और अर्गलाप्रतिबन्धक ग्रह एक हो तब अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंकी अपेक्षा अर्गलाप्रतिबन्धक ग्रह निर्बल हों तौ वह अर्गलाके प्रतिबन्धक नहीं होंगे ॥ ८ ॥

अब तृतीय अर्गला और अर्गलाके प्रतिबन्धक दिखातेहैं—

प्राग्वत्रिकोणे* । ९ ।

अर्थ—त्रिकोणके विषे अर्गला और अर्गलाके प्रतिबन्धक पूर्वकी समान जानना. (पञ्चम और नवमस्थानकी त्रिकोण संज्ञा है) अर्थात् जिस राशिके फलका विचार करना

* शंका "दारभाग्ये"त्यादि सूत्रमेही शान्तु पद देनेसे पञ्चमस्थानकी अर्गलासंज्ञा होजाती और "रिष्फनीचेत्यादि" सूत्रमे धातुपद देनेसे नवमस्थानी ग्रहकी प्रतिबन्धकता सिद्ध होजाती फिर "प्राग्वत्रिकोणे" यह सूत्र क्यो बनाया। समाधान। यद्यपि उपरोक्त रीतिसे इस सूत्रका कार्य्य होजाता परन्तु आगे जो "विपरीतं केतो." यह सूत्र पढा है उसका विषय त्रिकोणस्थानही है और यदि पूर्वोक्त सूत्रोंके अन्तर्गत शान्त और धातुपद पढदेते तौ "विपरीत केतो" यह सूत्र चतुर्थ, द्वितीयस्थानआदिमेंभी प्रवृत्त हो जाता सो यह सूत्र त्रिकोणमेंही प्रवृत्त हो इसकारण "प्राग्वत्रिकोणे" इस सूत्रको अलग पढा है ॥

हो उस राशिको देखनेवाले ग्रहसे पाँचवें स्थानमें जो ग्रह स्थित हो वह ग्रह उस राशिको देखनेवाले ग्रहका अर्गला होताहै । और यदि जिस राशिका विचार करना हो उस राशिको देखनेवाले ग्रहसे नवम स्थानमें अर्गलाकारक ग्रहसे बलवान् ग्रह हो अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक ग्रह हों तौ वह पञ्चमस्थानमें स्थित ग्रहका अर्गला नहीं होता है ॥ ९ ॥

केतुके विषयमें विशेषता दिखलातेहैं:—

विपरीतं केतोः । १० ।

अर्थ—"प्राग्वत्त्रिकोणे" इस सूत्रमें जो विधि कही है सो केतुके विषयमें विपरीत होतीहै; अर्थात् जिस राशिके फलका विचार करना हो, उस राशिको देखनेवाले केतुग्रहसे नवमस्थानमें जो ग्रह स्थित हो वह ग्रह उक्तराशिको देखनेवाले ग्रहका अर्गला होताहै । और यदि जिस राशिका विचार करना हो उस राशिको देखनेवाले केतुग्रहसे पञ्चमस्थानमें अर्गलाकारक केतुग्रहसे बलवान् कोई ग्रह हो अथवा अर्गलाकारक केतु ग्रहकी अपेक्षा अधिक ग्रह हों तौ वह नवमस्थानस्थित केतु ग्रहका अर्गला नहीं होताहै ॥ १० ॥

इस जातकशास्त्रमें विशेष करके कारकोंके द्वारा ग्रहोंका फल कहेंगे इस कारण कारकोंको वर्णन करनेकी इच्छा करतेहुए, जैमिनि, मुनि, प्रथम, आत्मकारकका, निरूपण, करतेहैं.

आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगःसमानामष्टानां वा । ११ ।

अर्थ—सूर्य्यसे लेकर शनैश्चरपर्य्यन्त सात अथवा सूर्य्यसे लेकर राहुपर्य्यन्त आठ ग्रहोंके मध्यमें जो ग्रह कलाओंकरके सब ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक हो वह ग्रह आत्मकारक होता है । यदि दो चार ग्रहोंकी कला समान हों तौ उनमें जो ग्रह अंशोंकरके सबकी अपेक्षा अधिक हो वह आत्मकारक होता है । और यदि दो चार ग्रहोंके कला और अंश दोनोंही समान हों तौ जो ग्रह आगे कही हुई रीतिके अनुसार बलवान् हो वह आत्मकारक होताहै । और यदि राहुके कला अंश आदि सब ग्रहोंकी अपेक्षा अल्प हों तौ राहुही आत्मकारक होताहै, क्योंकि "मेषाद्यसव्यमार्गेण राहुकेतू न कारकौ" मेष, वृष इत्यादि सूधे क्रमसे राहु और केतु कारक नहीं होतेहैं. किन्तु मीन, कुम्भ, मकर इत्यादि उलटे क्रमसे राहु और केतुको कारकत्व होताहै; और राहुकी विपरीतता तौ प्रसिद्धही है इसकारण सूत्रमें जो अधिक शब्द पड़ा उसका राहुके विषयमें विपरीत अर्थ किया है अर्थात् । अधिकका अल्प अर्थ किया है. इस विषयमें वृद्धकारिकाकाभी प्रमाण है "भागाधिकः कारकः स्यादल्पभागोऽन्त्यकारकः"—जिसके कलाअंशादि अधिक हों वह कारक होता है. और अन्त्यकारक अर्थात् राहुकारक तब होता है जब उसके सब ग्रहोंकी अपेक्षा कलांशादि अल्प हों ॥ ११ ॥

आत्मकारका फल कहतेहैं—

स ईष्टे बन्धमोक्षयोः । १२ ।

अर्थ—वह आत्मकारक बन्ध

होताहै. अर्थात् वह आत्मकारक यदि नीचग्रह और पापग्रहके योगसे अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बन्धन आदिका दुःख देताहै और यदि उच्च तथा शुभग्रहोंके योगसे अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे मोक्ष आदि सुख देताहै. अथवा आत्मकारक यदि नीच और पापग्रहोंके योगसे पापकर्मोंमें प्रवृत्ति कराकर संसारबन्धनका दुःख देता है और उच्च तथा शुभग्रहोंके योगसे काशीवासआदि शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति कराकर मोक्ष आदि सुख देता है ॥ १२ ॥

अब अमात्यकारक दिखाते हैं—

तस्यानुसरणादमात्यः। १३।

अर्थ—आत्मकारककी अपेक्षा जिसके कला अंशादि कम हों वह अमात्य (मंत्री) कारक होता है. इससे मंत्रीआदिका विचार कियाजाता है अर्थात् यदि अमात्यकारक नीच और पापग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या योग हो तौ मंत्रीआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख प्राप्त होता है. और यदि वह अमात्यकारक उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या योग हो तौ मंत्रीआदिके द्वारा सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

भ्रातृकारक दिखाते हैं—

फ.

तस्य भ्राता। १४।

रनेवा.

अर्थ—अमात्यकारकके अंशकलाओंसे जिस ग्रहके क-

आत्मा

कम हों वह ग्रह भ्रातृकारक कहाता है. इससे भ्रा-
विचार कराजाता है अर्थात् वह भ्रातृकारक ग्रह
पापग्रहोंके स्थानमें हो या उसको

योग हो तब वह भ्राताआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख देता है. और यदि वह भ्रातृकारक उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको शुभग्रहोंका योग हो तब वह भ्रातृकारक ग्रह भ्राताआदिके द्वारा सुख देता है ॥ १४ ॥

मातृकारक दिखाते हैं—

तस्य माता । १५ ।

अर्थ—भ्रातृकारककी अपेक्षा जिस ग्रहके कलाअंशादि कम हों वह मातृकारक कहाता है. उसके द्वारा मातादिका विचार कियाजाता है, अर्थात् मातृकारक ग्रह यदि नीच और पापग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको पापग्रहोंका योग हो तब वह माताआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख देता है. और यदि वह मातृकारकग्रह उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको शुभ ग्रहोंका योग हो तौ माताआदिके द्वारा सुख देता है ॥१५॥

पुत्रकारक दिखाते हैं—

तस्य पुत्रः । १६ ।

अर्थ—मातृकारकग्रहके कलाअंशोंकी अपेक्षा जिस ग्रहके कला अंशादि कम हों वह पुत्रकारक होता है. इससे पूर्वोक्तरीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंमे पुत्रके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये॥ १६ ॥

जातिकारक दिखाते हैं—

तस्य ज्ञातिः ।

अर्थ—पुत्रकारककी अपेक्षा जिस ग्रहके कला अंशादि कम हों वह ज्ञातिकारक कहाता है इससे पूर्वोक्त रीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे जातिके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये ॥ १७ ॥

स्त्रीकारक दिखाते हैं—

तस्य दाराश्च । १८ ।

अर्थ—ज्ञातिकारककी अपेक्षा जिस ग्रहके कला अंशादि कम हों वह ग्रह दारकारक कहाता है उससे पूर्वोक्त रीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंमें स्त्रीके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये ॥ १८ ॥

पुत्रकारकके विषयमें मतान्तर दिखाते हैं—

मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति । १९ ।

अर्थ—किन्ही जातकके आचार्योंका ऐसा मत है कि मातृकारकसेही पुत्रकारकका विचार होता है. अर्थात् मातृकारक और पुत्रकारक दोनों एकही हैं इसकारण मातृकारक ग्रहसेही पुत्रकारकका विचार करना चाहिये ॥ १९ ॥

यहांपर्य्यन्त चलकारक कहे अब नित्यकारकों (स्थिर कारकों) को कहनेका प्रारम्भ करते हुये जैमिनि मुनि प्रथम भ्रगिन्यादि स्थिर कारकको कहते हैं—

भगिन्याऽरतः श्यालः कनीयाञ्जननी-
१-२०-२ चेति । २० ।

अर्थ—बहिन, स्त्रीका भ्राता (साला), छोटा भ्राता और माता इनका मङ्गलसे विचार करना चाहिये; अर्थात् यदि मङ्गल उच्चस्थान और शुभग्रहोंके स्थानमें पड़ा हो तौ मङ्गलकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बहिन आदिके द्वारा सुख होता है और यदि मङ्गल नीच या पापग्रहोंके स्थानमें पड़ा हो तौ मङ्गलकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बहिन साले आदिके द्वारा दुःख होता है ॥ २० ॥

अब मातुलआदि स्थिरकारक दिखाते हैं—

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया
२१- इत्युत्तरतः । २१ ।

अर्थ—मामा (माताका भ्राता) आदि माताकी बहिनें और माताआदि तथा माताकी जातिके पुरुषोंकी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार बुधकारकसे विचार करना चाहिये ॥ २१ ॥

पितामहादिस्थिरकारक दिखाते हैं:—

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव
जानीयात् । २२ ।

अर्थ—पितामह (दादा) पति और पुत्र इनका बृहस्पति, शुक्र, और शनैश्चरसे पूर्वोक्तरीतिके अनुसार सुखदुःखरूप फलका विचार करै; अर्थात् बृहस्पतिसे पितामहका विचार करै, शुक्रसे पतिका विचार करै, शनैश्चरसे पुत्रका विचार करै ॥ २२ ॥

पत्न्यादिकारक दिखाते हैं:—

पत्नीपितरौ श्वशुरौ मातामहा इत्यन्तेवासिनः । २३ ।

अर्थ—स्त्री, माता, पिता, श्वसुर-सासु, मातामह (नाना) इन सबका विचार शुक्रसे करना चाहिये ॥ २३॥

जहाँ कारकत्वमें दो तीन ग्रह समान हों तहाँ किस ग्रहके द्वारा विचार करें; इस सन्देहको दूर करनेके निमित्त ऐसा आचार्यने समाधान किया है कि जो ग्रह स्वाभाविक बलवान् हो वही कारक होता है; इसकारण ग्रहोंके स्वाभाविक बलका निरूपण करते हैं:—

मन्दोऽज्यायान् ग्रहेषु । २४ ।

अर्थ—शनिआदि सूर्य्यपर्य्यन्त सातों ग्रहोंमें शनैश्वर सब ग्रहोंकी अपेक्षा दुर्बल है सोई बृहज्जातकमें कहा है. "शकुबुगुशुचराद्या वृद्धितो वीर्य्यवन्तः" शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा, सूर्य्य यह क्रमसे उत्तरोत्तर बलवान् हैं; अर्थात् शनिकी अपेक्षा मङ्गल बलवान् है, मङ्गलकी अपेक्षा बुध बलवान् है, बुधकी अपेक्षा बृहस्पति बलवान् है, बृहस्पतिकी अपेक्षा शुक्र बलवान् है, शुक्रकी अपेक्षा चन्द्रमा बलवान् है. चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्य्य बलवान् है ॥ २४ ॥

चरदशाके वर्ष जाननेमें उपयोगी होनेके कारण विषमराशियोंकी गणनाका भेद दिखाते हैं:—

प्राचीवृत्तिर्विषमभेषु । २५ ।

अर्थ—प्रथम, तृतीय, पञ्चमआदि विषमराशियोंकी अर्

मसे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुम्भ इसप्रकार गणना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

सम राशियोंकी गणनाका प्रकार लिखते हैं—

परावृत्त्योत्तरेषु । २६ ।

अर्थ—द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठआदि सम राशियोंकी उलटे क्रमसे गणना होती है. जैसे मीन, मकर, वृश्चिक, कन्या, कर्क, वृष ॥ २६ ॥

प्राचीवृत्तिरित्यादि उपरोक्त दोनों सूत्रोंमें कहीहुई सम विषमराशियोंकी गणनाके विषयमें अपवादसूत्र दिखाते हैं—

न क्वचित् । २७ ।

अर्थ—कसी किसी स्थानमें विषमराशियोंकी क्रमसे समराशियोंकी व्युत्क्रमसे गणना नही होती है ॥ २७ ॥

चरदशाके वर्ष जाननेकी रीति लिखते हैं—

नाथान्ताः समाः प्रायेण । २८ ।

अर्थ—कौन कौन राशिका कौन स्वामी है यह विचार इस ग्रन्थमें नहीं लिखा है सो अन्य ग्रन्थकी रीतिसे लिखते है—तथा च वृहज्जातके—

× किसी आचार्य्यका ऐसा मत है 'मेषादित्रित्रिभिर्ज्ञेयं पदमोजपदे क्रमात् । दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमन समे'—मेषादि तीन तीन राशियोंका एक २ पद होता है अर्थात् बारहों राशियोंके मेष-वृष-मिथुन, कर्क सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक धन, मकर, कुम्भ, मीन, यह चार पद होते हैं इनमें प्रथम और तृतीय पदकी गणना क्रमसे करनी चाहिये और द्वितीय चतुर्थ पदकी गणना उलटे क्रमसे करना चाहिये ॥ + "जगत्तन्धुपोरदयोमादे' इत्यादि सूत्रोंके विषयमें इस चरदशाका व्यवहार होता है ॥

क्षितिजसितज्ञचन्द्ररविसौम्यसितावनिजाः ।
सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः ॥ १ ॥

अर्थ—मेषका स्वामी क्षितिज (मंगल) है, वृषका स्वामी सित (शुक्र) है, मिथुनका स्वामी ज्ञ (बुध) है, कर्कका स्वामी चन्द्रमा है, सिंहका स्वामी रवि (सूर्य्य) है, कन्याका स्वामी सौम्य (बुध) है, तुलाका स्वामी शुक्र है, वृश्चिकका स्वामी अवनिज (मंगल) है, और केतु है, धनका स्वामी सुरगुरु (बृहस्पति) है, मकरका स्वामी मन्द (शनैश्चर) है, कुम्भका स्वामी शनैश्चर और राहु है, और [illegible]का स्वामी बृहस्पति है ॥ १ ॥

[illegible]चरदशामें जिन २ राशियोंके दशाके वर्ष जानना [illegible]त हों उन २ राशियोंसे लेकर, जिन जिन स्थानोंमें उनके स्वामी स्थित हों तहाँ पर्य्यन्त गणना करै जो संख्या आवै वही उस राशिके वर्षोंकी संख्या होगी. जैसे मिथुनराशिकी दशाके वर्ष लाना हों और मिथुनराशिका स्वामी बुध कुम्भराशिमें स्थित हो तब मिथुनसे लेकर कुम्भपर्य्यन्त गणना करी तब आठ हुए यही चरदशामें मिथुनराशिकी दशाके वर्ष होंगे । और यदि राशिका स्वामी अपनेही स्थानमें बैठा हो तौ उस राशिकी दशाके बारह वर्ष होते हैं । और यदि जिस राशिकी दशाके वर्ष जानना हों उस राशिका स्वामी अपने स्थानमें स्थित होकर उच्चका पड़ा हो तौ एक वर्ष बढ़जाता है; अर्थात् उस राशिकी दशा तेरह वर्षकी होती है । और यदि जिस राशिकी दशाके वर्ष जानना हों उस राशिका स्वामी अपने स्थानमें स्थित होकर नीचका

हो तो दशामें एक वर्ष घट जाता है, अर्थात् उस राशिकी दशा ग्यारह वर्षकी होती है। इस विषयमें वृद्धकारिकाका प्रमाण—

"तस्मात्तदीशपर्य्यन्तं संख्यामत्रदशां विदुः।
वार्षद्वादशकं तत्र नचेदेकं विनिर्दिशेत्॥ १॥
उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं विनिःक्षिपेत्।
तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत्॥ २॥"

अर्थ—चर दशाके विषे जिस राशिकी दशाके वर्ष जानने हों उससे लेकर उसका स्वामी जिस स्थानमें बैठा हो वहाँपर्य्यन्त गणना करे जो संख्या आवे वही उक्त राशिकी दशाके वर्ष कहेजाते हैं, और यदि उस राशिका स्वामी अपनेही स्थानमें हो तो उस राशिकी बारह वर्षकी दशा होती है॥ १॥ और यदि अपने स्थानमें स्थित होकर ग्रहोच्च हो तो बारहमें एक वर्ष और बढ़ादेय और यदि नीच हो तो बारहमें एक वर्ष घटा देय॥ २॥

इस ग्रन्थमें ग्रहोंकी उच्चता और नीचताका विचार नहीं किया है इसकारण उच्च नीच ग्रहोंके जाननेकी रीति लघुजातकके अनुसार लिखते हैं—

"अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः। दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः॥ १॥"

अर्थ—मेषके दशअंशपर्य्यन्त सूर्य्यका उच्च और तुलाके दशअंशपर्य्यन्त नीच होता है। वृषराशिके तीन अंशपर्य्यन्त चन्द्रमाका उच्च और वृश्चिकके तीन अंशपर्य्यन्त नीच होता

है, मकरके अट्ठाईस अंशपर्य्यन्त मङ्गलका उच्च और कर्कके अट्ठाईस अंशपर्य्यन्त नीच होता है, कन्याके पन्द्रह अंशपर्य्यन्त बुधका उच्च और मीनके पन्द्रह अंशपर्य्यन्त नीच होता है, कर्कके पांच अंशपर्य्यन्त बृहस्पतिका उच्च और मकरके पाँच अंशपर्य्यन्त नीच होता है, मीनके सत्ताईस अंशपर्य्यन्त शुक्रका उच्च और कन्याके सत्ताईस अंशपर्य्यन्त नीच होता है, और तुलाके बीस अंशपर्य्यन्त शनैश्चरका उच्च और मेषके बीस अंशपर्य्यन्त नीच होता है ॥ १ ॥

वृश्चिक और कुम्भराशिकी दशाके वर्ष जाननेमें जो विशेषता है सो वृद्धकारिकाके अनुसार लिखते हैं—

कुजसौरी केतुराहू राजानावलिकुम्भयोः ।
कुजसौरी केतुराहू युक्तौ तत्र स्थितौ यदि ॥
वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत् ।
विनाथक्षेत्रयोरत्र निर्णयः कथ्यतेऽधुना ॥
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ।
तदान्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत् ॥
स्वक्षेत्रे मिलितावेव स्वामिनस्त्वेकशस्तथा ।
एकस्य स्वगृहस्थत्वं नहि कार्य्योपयोगिकम् ।
द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत्सग्रहो बलवान् भवेत् ।
ग्रहयोगसमानत्वे चिन्त्यं राशिबलाद्बलम् ॥
चरस्थिरद्विःस्वभावाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ।
राशिसत्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ॥

एकः स्वोच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः ।
ग्राहयेदुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥

अर्थ—मङ्गल और केतु यह दोनों वृश्चिकराशिके स्वामी हैं, और शनैश्चर तथा राहु यह दोनों कुम्भराशिके स्वामी हैं। जिस एकही स्थानपर मङ्गल और केतु तथा शनैश्चर और राहु दोनों एक साथ स्थित हों उस स्थानपर्य्यन्त गणना करनेसे वृश्चिक और कुम्भराशिकी दशाके वर्ष मिलते हैं, और यदि दोनोंही मिलकर अपने राशिपर स्थित हों तो बारह वर्षकी दशा होती है । द्विनाथस्थान अर्थात् वृश्चिक और कुम्भराशिके विषयमें और विशेष निर्णय लिखतेहैं कि–यदि दोनों स्वामियोंमें एक तो अपने स्थानपर स्थित हो और दूसरा ग्रह अन्यस्थानमें स्थित हो तब अपने स्थानमें स्थित ग्रहानुसार दशाका ग्रहण न करके अन्य स्थानमें स्थित ग्रहपर्य्यन्त गणना करके चरदशाके वर्ष जानना चाहिये। और यदि दोनों ग्रह अपने स्थानको छोड़कर, भिन्न भिन्न स्थानमें स्थित हों तब उन दोनोंमें जो बली हो, उसके स्थानपर्य्यन्त गणना करनेसे चरदशाके वर्ष मिलते हैं । और यदि अपने स्थानको छोड़कर भिन्न स्थानमें स्थित होकरभी दोनों समबल हों तो दोनोंमें जो राशिबलके अनुसार बली हो उसके स्थानपर्य्यन्त गणना करनेसे चरदशाके वर्ष मिलते हैं । राशिबल दिखलातेहैं—चरराशिकी अपेक्षा स्थिरराशि बलवान् होता है, स्थिरराशिकी अपेक्षा द्विःस्वभावराशि बलवान् होता है. इसीके अनुसार इनराशियोंमें स्थित ग्रहोंकाभी बलवत्त्व और निर्बलत्व जानना चाहिये । यदि दोनों ग्रहोंका राशिबलभी समान होय तो जिस ग्रहके अधिक वर्ष आते

हों उसके स्थानपर्य्यन्त गणना करके चर दशाके वर्ष ग्रहण करे। और यदि दोनों ग्रहोंमें एक अपने उच्चस्थानमें स्थित हो और दूसरा अन्यस्थानमें स्थित हो तौ उच्चग्रहके स्थानपर्य्यन्त गणना करके दशाके वर्ष ग्रहण करे। और दोनों ग्रहोंमें एक अपने उच्चस्थानमें स्थित हो और दूसरा बहुत वर्षोंवाला हो तबभी उच्चग्रहके स्थानपर्य्यन्त गणना करके दशाके वर्ष ग्रहण करे ॥ २८ ॥

आगे फलविशेष जाननेके निमित्त राशियोंका आरूढनामक द्वितीयपदका विषय लिखते हैं—

यावदीशाश्रयं पदमृक्षाणाम्। २९।

अर्थ—जिस राशिका आरूढपद जाननेकी अपेक्षा हो उस राशिसे प्रारंभ करके उस राशिका स्वामी जिस स्थानपे स्थित हो उस स्थानपर्य्यन्त गणना करनेसे जो संख्या लब्ध हो स्वामीके स्थानसे उतनीही संख्यावाला स्थान उक्तराशिका आरूढपद होता है. जैसे मेषका आरूढपद जानना हो और मेषका स्वामी मङ्गल कर्कमें स्थित हो तब मेषसे तृतीयस्थान कर्क हुआ इसकारण उपरोक्त रीतिके अनुसार स्वामीके ग्रह कर्कसे तीन ग्रह और गिना तब तुला राशि आई यही मेषराशिका आरूढपद होगा ॥ २९ ॥

अब आरूढपदके उदाहरणरूप दो सूत्र लिखते हैं:—

स्वस्थे दाराः+। ३०।

+ किन्हीका ऐसा मत है कि–इन दोनों सूत्रोंका विशेष प्रयोजन न होनेसे आचार्य्यका ऐसा तात्पर्य्य विदित होताहे कि–दाराः? विचारणीया ॥

अर्थ—यदि लग्नसे स्वस्थ (चतुर्थ) स्थानपर लग्नका स्वामी स्थित हो तब सप्तमस्थान लग्नराशिका आरूढ़पद होगा ॥ ३० ॥

सुतस्थे जन्म× । ३१ ।

अर्थ—यदि लग्नका स्वामी लग्नसे सुत (सप्तम) स्थानपर स्थित हो तौ लग्नराशिही लग्नराशिका आरूढ़पद होगा॥३१॥

अब राशि और भावोंके वर्णादि लिखते हैं—

सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्च । ३२ ।

अर्थ—इस ग्रन्थमें सर्वत्र भाव और राशि एक आदि संख्याके जनानेवाले 'क.ट.प.य' आदि वर्णोंसे जाती जाती हैं. **शंका**—आगे कहेहुये "सिद्धमन्यत्" इस सूत्रके अनुसार शिवताण्डवादि अन्य ग्रन्थोंसे 'क.ट.प.य'आदि वर्णोंके अनुसार संख्या प्रसिद्धही है फिर इस सूत्रका क्या प्रयोजन है ? इसका **समाधान**—करनेके निमित्त इस सूत्रका अन्यरीतिसे व्याख्यान करते हैं ।—इस जातक शास्त्रमें सर्वत्र भाव और राशि वर्णद राशिसे युक्त होते हैं वर्णद राशिके जाननेकी रीति वृद्धकारिकाके अनुसार लिखते हैं—

ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत्क्रमात् ।
युग्मलग्नप्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः॥
मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत्सुधीः ।

× चतुर्थस्थानसे स्त्रियोंका विचार करै और "सुतस्थे जन्म" मातु ॥ सप्तमस्थानसे भ्राताके जन्मका विचार करै । नीलकण्ठ ऐसा देखते हैं यह कहना ठीक नहीं ॥

तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम् ॥
पुंस्त्वेन स्त्रीतयावैते सजातीये उभे यदि ।
तर्हि संख्ये योजयीत वैजात्ये तु वियोजयेत् ॥
मेषमीनादितः पश्चाद्योराशिः स तु वर्णदः ।

अर्थ—मेष, मिथुन इत्यादि राशियोंमें यदि जन्मलग्न हो तौ मेष, वृष इत्यादि क्रमसे गणना करे और यदि वृष, कर्क इत्यादि समराशियोंमें जन्मलग्न होय तौ मीन, कुम्भ इत्यादि उलटी रीतिसे जन्मलग्नपर्य्यन्त गणना करनेसे जो अङ्क मिलैं और उक्तरीतिके अनुसार होरालग्नपर्य्यन्त गणना करनेसे जो अङ्क मिलैं इन दोनों अङ्कोंको यदि जन्मलग्न और होरालग्न दोनों स्त्रीही हों या दोनों पुरुषही हों तौ जोड़े, और यदि जन्मलग्न और होरालग्नमें एक स्त्री हो एक पुरुष हो तौ घटाव करै. तब जो अङ्क सिद्ध होय उसमें बारहका भाग देय जो शेष बचै, जन्मलग्नसे गिनकर उतनीही संख्यावाला स्थान जन्मलग्नका वर्णद होता है ॥

इसीप्रकार सम्पूर्णराशियोंके और भावोंके वर्णद जानै और इसीप्रकार भावलग्नके वर्णद जानै । अब भावलग्न और होरालग्नके जाननेकी रीति वृद्धकारिकाके अनुसार लिखतेहैं—

सूर्य्योदयं समारभ्य घटिकानान्तु पञ्चकम् ।
प्रयाति जन्मपर्य्यन्तं भावलग्नंतथैव च ॥
तथा सार्द्धं द्विघटिकामितात्कालाद्विलग्नभात् ।

× वर्णदकी रीतिसे गुलिकभी बनता है, जिसप्रकार चरदशाके वर्ष जाननेकी रीति कही है उसीप्रकार वर्णराशियोंकी दशाके वर्ष भी जानै ॥

प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥

अर्थ—सूर्य्योदयसे लेकर जन्मकालपर्य्यन्त जितने इष्टदण्ड हों उनमें पाँचका भाग देय जो लब्धि आवे उसको राशि जाने जो शेष बचे उसको तीससे गुणा करके फिर पाँचका भाग देय. जो लब्धि हो उसको अंश माने शेषसे कला विकला आदि जाने । ऊपर लायाहुआ राशि जितनी संख्यावाला हो लग्नसे उतनी संख्यापर जो स्थान हो वही भावलग्न कहाता है । और होरालग्नकी रीतिमें भावलग्नकी अपेक्षा इतनीही विशेषता है कि—इष्टदण्डोंमें ढाईका भाग दियाजाता है+ ॥

अब प्राचीन कारिकाके अनुसार वर्णद राशियोंका फल कहते हैं—

पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके ।
यदि स्यात्तर्हि तद्राशिपर्य्यन्तं तस्य जीवनम्
रुद्रशूले तथैवायुर्मरणादि निरूप्यते ।
तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसङ्गमे ॥
वर्णदात्सप्तमाद्राशेः कलत्रादि विचिन्तयेत्
एकादशादग्रजन्तु तृतीयात्तु यवीयसम् ॥
पञ्चमे तनुजं विद्यान्मातरं तुर्य्यपञ्चमे ।
पितुस्तु नवमान्मातुः पञ्चमाद्वर्णदस्य तु ॥
शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् ।

+ इतनी औरभी विशेषता है कि यदि जन्मलग्न विषम हो तौ सूर्यस्थित राशिसे लेकर शुक्रराशिकी संख्या जहाँ समाप्त हो वह होरालग्न होता है और यदि जन्मलग्न सम हो तो जन्मलग्नसे लेकर उक्त राशिकी संख्या जहां समाप्त हो वह होरालग्न होता है ॥

अर्थ—जिसके वर्णद राशिके त्रिकोण (पञ्चम और नवम) स्थानमें पापग्रहकी दृष्टि हो या पापग्रहका योग हो उसी राशिकी दशापर्य्यन्त जीवन होता है। और रुद्रशूलमेंभी आयु और मरणका विचार कियाजाता है और वर्णद राशिके त्रिकोणस्थानमें यदि पापग्रहोंका सङ्गम हो तवभी उपरोक्त फल होता है। वर्णद राशिसे सप्तम राशिसे स्त्रीआदिका विचार करै, और वर्णदराशिसे एकादशस्थानके द्वारा ज्येष्ठ भ्राताका विचार करै, तथा वर्णदराशिसे तृतीयस्थानके द्वारा छोटे भ्राताका विचार करै। पञ्चमस्थानमें पुत्रका विचार करै, और चतुर्थपञ्चममें माताका विचार करै, वर्णद राशिसे पञ्चमस्थानकी अपेक्षा प्रबलशूलदशामें माताकी अरिष्ट जानै और वर्णद राशिसे नवमस्थानकी अपेक्षा प्रबल शूलदशामें पिताका अरिष्ट जानै ॥ ३२ ॥

उपरोक्त सूत्रके विषयमें ग्रहोंके वर्णदोंका निषेध दिखातेहैं

न ग्रहाः। ३३।

अर्थ—"सर्वत्र सवर्णाभावा राशयश्च" इस सूत्रकी जो दो प्रकारसे व्याख्या लिख आये हैं तहाँ प्रथमपक्षमें जो अर्थ किया है कि भाव और राशिसंख्याबोधक 'क.ट.प.य' आदि अक्षरोंसे जाने जातेहैं. ऐसा कहा है. उस पक्षमें इस सूत्रका ऐसा अर्थ करना कि—ग्रहसंख्याबोधक 'क.ट.प.य' आदि वर्णोंसे नहीं जानेजाते हैं। और दूसरे पक्षमें अर्थ किया है कि—भाव और राशिवर्णद राशियोंसे होतेहैं ऐसा कहा है उस पक्षमें इस सूत्रका ऐसा अर्थ करै कि ग्रहोंके वर्णद नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥

अब अन्तर्दशाका विभाग लिखतेहैं—

यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम् । ३४ ।

अर्थ—अन्तर्दशा जाननेके निमित्त बारहों राशियोंके १४४* एकसौ चौवालीस भाग करे अर्थात् चर, स्थिर, द्विस्वभाव इन बारहों राशियोंके विषे हरएक राशिका बारहवाँ भाग एक एक राशिकी अन्तर्दशाका भोग होता है। तहाँ अपनी दशामें प्रथम अपनीही अन्तर्दशाका भोग होता है। जैसे मेषराशिकी दशामें प्रथम बारहवाँ भाग मेषकीही अन्तर्दशा होगी, द्वितीयभाग वृषकी अन्तर्दशा होगी, तृतीयभाग मिथुनकी अन्तर्दशा होगी, इत्यादि। और वृषकी दशाके विषे प्रथम बारहवाँ भाग वृषकीही अन्तर्दशा होगी, द्वितीय भाग मिथुनकी अन्तर्दशा होगी इत्यादि रीतिही बारहों राशियोंकी दशामें अन्तर्दशा जाननेकी है. परन्तु यह रीति यदि विषमराशिमें जन्मलग्न हो तौ होती है और समराशिकी जन्मलग्नवालेकी अन्तर्दशामें जो विशेषता है सो वृद्धकारिकाके अनुसार दिखाते हैं—

"लग्नयुग्मं यदा तर्हि सम्मुखं तस्य चादिमम्"

अर्थ—यदि समराशिमें जन्म होय तौ जिसकी दशामें अन्तर्दशा जानना हो उसकी अन्तरदशाका प्रथम बारहवें भागमें भोग होताहै और द्वितीय बारहवें भागमें उसके आदिकी राशिकी अन्तर्दशाका भोग होताहै, जैसे वृषराशिमें जन्मलग्न होय तौ वृषराशिका प्रथम बारहवां भाग वृषराशिकी अन्तर्दशा होती है, और दूसरा भाग मिथुनकी अन्त-

* "यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम्" इस सूत्रमें पढे हुए "द्विवेक" "द.व.य" आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार एकसौचौवा[illegible] बोध होताहै ॥

दशा न होकर मेषकी अन्तर्दशा होती है, तृतीयभाग मिथुनकी अन्तर्दशा होती है, चतुर्थभाग कर्ककी अन्तर्दशा होतीहै इत्यादि । इसप्रकार हरएक राशिके बारह भाग होनेसे अन्तर्दशा जाननेके निमित्त बारहों राशियोंके १४४ भाग होतेहैं॥३४॥

इस शास्त्रमें आगे होरा और द्रेष्काणआदिकी अपेक्षा होयगी इसकारण ग्रन्थान्तरप्रसिद्ध होराआदि ग्रहण करना यह वार्ता लिखतेहैं—

होरादयः सिद्धाः । ३५ ।

अर्थ—होरा द्रेष्काण आदि शास्त्रान्तरप्रसिद्ध मेषआदि गणनाके अनुसार जाने । तहाँ वृद्धकारिकाओंके अनुसार होरा, द्रेष्काण, सप्तांशक नवांशक और द्वादशांशक जाननेकी रीति लिखते हैं—

राशेरर्द्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः ।
मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥

अर्थ—एक राशिके अर्द्धभागका नाम होरा है, अर्थात् एक राशिमें दो होरा होते हैं. इस प्रकार बारहों राशियोंमें चौबीस २४ होरा होते हैं. मेषादि राशियोंकी दो दो बार गिनती होतीहै ॥

राशित्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः ।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशोभवेत् ॥

अर्थ—एक राशिके तीन द्रेष्काण होतेहैं अर्थात् एक राशिके तृतीयांशका नाम द्रेष्काण है. इसप्रकार बारहों राशियोंके होतेहैं छत्तीस ३६ द्रेष्काण होतेहैं. मेषादि राशियोंकी तीन... कि ग्रहोंके योगी है ॥

सप्तांशकास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः ।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षाधिनायकात् ॥

अर्थ—एक राशिमें सात सप्तमांश होते हैं, परन्तु इतनी विशेषता है कि यदि विषम राशि हो तौ उसका प्रथम सप्तमांश उसही राशिका होताहै, फिर दूसरे राशिका होताहै. इसीप्रकार तृतीय आदिका होताहै। और यदि समराशिका हो तौ उलटा क्रम करना चाहिये अर्थात् उसका पहला सप्तमांश उससे सातवें राशिका होताहै, दूसरोंका इसी क्रमसे इत्यादि ॥

नवांशेशाश्चरे तस्मात्स्थिरे तन्नावमादितः ।
उभये तत्पञ्चमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ॥

अर्थ—एक राशिमें नौ ९ नवमांश होतेहैं परन्तु इतनी विशेषता है कि—चर राशि होय तौ प्रथम नवमांश उसही राशिका होताहै; फिर दूसरेका इत्यादि । और यदि स्थिर राशि हो तौ उसका प्रथम नवमांश उससे नवमें राशिका होताहै फिर इसीक्रमसे जानना । और यदि द्विःस्वभावराशिका नवमांश होय तौ प्रथम नवमांश पाँचवें राशिका होताहै. फिर इसी क्रमसे औरोंका ॥

"द्वादशांशस्य गणानां तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत्"

अर्थ—एक राशिके बारह द्वादशांश होतेहैं । प्रथम द्वादशांश उसही राशिका होताहै, फिर इसी क्रमसे औरोंका जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीजैमिनीये जातकशास्त्रे पण्डितरामस्वरूपविरचितायां स्वरूपकाभिधायां भाषाटीकायां प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयः पादः ।

अब आत्मकारकके आश्रयीभूत नवांशकको अवलम्बन करके फलोंके कहनेका प्रारम्भ करतेहैं—

अथ स्वांशोग्रहाणाम् । १ ।

अर्थ—सूर्यादि ग्रहोंके विषे आत्मकारकाश्रित जो नवमांश हो अर्थात् पूर्वोक्तरीतिके अनुसार जानाहुआ आत्मकारक जिस राशिके नवमांशमें स्थित हो उस नवमांशसे फलका विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

आत्मकारकाश्रित मेषादिनवमांशोंके फल—

पञ्च मूषिकमार्जाराः । २ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मेषके नवमांशमें हो उसको चूहा और बिलावके द्वारा दुःखकी प्राप्ति होती है॥२॥

तत्र चतुष्पादः । ३ ।

अर्थ—जिसपुरुषका आत्मकारक वृषके नवमांशमें हो उसको चार चरणवालोंके द्वारा लाभ होता है ॥ ३ ॥

× इस सूत्रमें 'तत्र' इस सर्वनामके द्वारा पूर्वसूत्रका परामर्श होनेके कारण दोनों सूत्रोंकी एकवाक्यता करके ऐसा अर्थ करना चाहिये कि "जिसका आत्मकारक मेषके नवमांशमें स्थित हो उस पुरुषको चूहा और बिलावसे दुःखकी प्राप्ति होतीहै और चार चरणवाले पशुओंके द्वारा सुखप्राप्ति होतीहै" ऐसा दोनों सूत्रोंका इस अर्थ होना चाहिये फिर अलग अर्थ करनेमें क्या प्रमाण है? तहां कहतेहैं वृद्धकारिकाही प्रमाण है "वृषतौल्यंशकगते तस्मिन्वाणिज्यवान्भवेत् । मेषांसहांशकगते ब्रूयान्मूषकदंशनमिति" ॥

मृत्यौ कण्डूः स्थौल्यञ्च । ४ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मिथुनके नवमांशकमें स्थित हो उसके शरीरमें कण्डूरोग होताहै और शरीर स्थूल होजाताहै ॥ ४ ॥

दूरे जलकुष्ठादिः । ५ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक कर्कके नवमांशमें हो उस पुरुषको जलसे भय अर्थात् कूप नदीआदिमें डूबना फल कहना तथा कुष्ठआदिरोगभी होताहै ॥ ५ ॥

शेषाः श्वापदानि । ६ ।

—अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक सिंहके नवमांशकमें स्थित हो उसको श्वापदों (पजेवाले सिंह, रीछ, कुक्कुरादि) से भय होताहै ॥ ६ ॥

मृत्युवज्ज्यायाग्निकणश्च । ७ ।

जिस पुरुषका आत्मकारक कन्याके नवमांशकमें स्थित हो उसके शरीरमें कण्डू (खुजली) होतीहै, शरीर स्थूल होताहै तथा अग्निसे भयभी होताहै ॥ ७ ॥

लाभे वाणिज्यम् । ८ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक तुलाके नवमांशकमें स्थित हो उसको व्यापारके द्वारा लाभ होताहै ॥ ८ ॥

+ 'मृत्यु' शब्दसे 'क ट प य ' आदि वर्णोंकी सङ्ख्याके अनुसार मिथुनराशिका बोध होताहै । × 'दूरे' शब्दसे 'क ट प य ' आदि वर्णोंकी सङ्ख्याके अनुसार कर्कराशिका लाभ होताहै * 'शेष' शब्दसे सिंहराशिका बोध होताहै । * 'जाया ' शब्दसे कन्याराशिका बोध होताहै + 'लाभ ' शब्दसे तुलाराशिका बोध होताहै ।

+अत्र जलसरीसृपास्तन्यहानिश्च । ९ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक वृश्चिकके नवमांशकमें स्थित हो उसको जल और सर्पसे भय होताहै, माताका दुग्ध सूखजाता है ॥ ९ ॥

×समेवाहनादुच्चाच्च क्रमात्पतनम् । १० ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक धनके नवमांशकमें स्थित हो वह पुरुष सवारीपरसे और ऊंचे स्थानपरसे गिरता है ॥ १० ॥

जलचरखेचरखेटकण्डूदुष्टग्रन्थयश्च रिष्फे । ११ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मकरके नवमांशमें स्थित हो उस पुरुषको जलचर कहिये जलके जीवोंसे खेचर कहिये आकाशके पक्षियोंसे तथा ग्रहोंसे लाभ होताहै, कण्डू रोगभी होताहै ॥ ११ ॥

तडागादयो धर्म्मे । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक कुम्भके नवमांशकमें स्थित हो वह पुरुष तालाव बावड़ी कूप आदिका बनवानेवाला होता है ॥ १२ ॥

+उच्चे धर्म्मनित्यता कैवल्यञ्च । १३ ।

+ 'अत्र' शब्दसे वृश्चिक राशिका बोध होताहै । × 'सम' शब्दसे धन राशिका बोध होताहै । * 'रिष्फ' शब्दसे मकर राशिका बोध होताहै । * 'धर्म्म' शब्दसे कुम्भ राशिका बोध होताहै । + 'उच्च' शब्दसे मीन राशिका बोध होताहै ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मीन राशिके नवांशकमें हो उस पुरुषकी धर्म्ममें निष्ठा रहतीहै और मुक्तिको प्राप्त होताहै । वृद्धकारिकामें जो इसकी अपेक्षा आत्मकारक अधिक फल कहा है सो लिखते हैं—

शुभराशौ शुभांशे वा कारकांशे धनवान्भवेत् ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक शुभ राशिमें या शुभ नवांशमें स्थित हो वह धनी होताहै ।

तदंशकेन्द्रेषु शुभे राजा नूनं प्रजायते ॥

अर्थ—जिस शुभ नवमांशमें आत्मकारक ग्रह स्थित हो उसही आत्मकारक ग्रहके नवमांश केन्द्रस्थानमें शुभग्रह स्थित हो तौ उस पुरुषको राजयोग होताहै । अर्थात् वह पुरुष राजा होताहै ॥

कारके शुभराश्यंशे लग्नांशस्थे शुभग्रहे ।
उपग्रहस्य पाश्चात्ये स्वोच्चस्वर्क्षशुभर्क्षगे ॥
पापदृग्योगरहिते कैवल्यं तस्य जायते ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक ग्रह शुभराशि और शुभनवमांश तथा लग्नके नवमांशमें शुभग्रहके साथ रहाहो या आत्मकारक ग्रहके पीछे राहु केतु (उपग्रह) स्थित हों अथवा अपने उच्चस्थानमें स्थित हो अपनी राशिपर स्थित हो शुभराशिपर स्थित हो अथवा पापदृष्टि या पापग्रहका साथ न हो ऐसे आत्मकारकवाले पुरुषको मोक्षप्राप्ति होतीहै॥

मिश्रे मिश्रं विजानीयाद्विपरीते विपर्ययः ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहको पापग्रह और शुभग्रह दोनोंका योग हो उसको स्वर्गप्राप्ति होतीहै,

और यदि केवल पापग्रहमात्रकाही योग हो या दृष्टि हो अथवा सङ्ग हो तो मुक्ति न हो न स्वर्ग हो किन्तु नरकादि दुःखकी प्राप्ति होतीहै ।

चन्द्रभृग्वारवर्गस्थे कारके पारदारिकः ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक ग्रह चन्द्रमा शुक्र और मङ्गलके वर्गमें स्थित हो वह पुरुष परस्त्रीगामी होताहै ॥ १३ ॥

अब आत्मकारक ग्रहके नवमांशमें ग्रहोंकी स्थिति आदिके अनुसार फल कहते हैं—

तत्र रवौ राजकार्य्यपरः । १४ ।

जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहके नवमांशमें सूर्य्य स्थित हो वह पुरुष राजकार्य्यका करनेवाला होताहै अर्थात् किसी राजाके कार्य्यको करताहै । १४ ।

आत्मकारकके नवमांशमें पूर्ण चन्द्रमा और शुक्रकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें पूर्ण चन्द्रमा और शुक्र स्थित हों वह पुरुष विषयोंके सुखको भोगताहै और विद्यासे आजीविका करताहै ॥ १५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें मङ्गलकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

धातुवादी कौन्तायुधो वह्निजीवी च भौमे । १६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें मङ्गल स्थित हो वह पुरुष सुवर्ण आदि धातुकी शुद्धाशुद्धिको जाननेवाला होताहै, रसायन जाननेवाला होताहै, वह शस्त्रको धारण करताहै, भाड भट्टी आदिके द्वारा अग्निसे आजीविका करताहै ॥

आत्मकारकके नवमांशमें बुधकी स्थितिका फल कहतेहैं—

वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये । १७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशकमें बुध स्थित हो वह पुरुष वैश्य या जुलाहा या बढ़ई आदि कारीगरका काम करनेवाला और संसारके व्यवहारोंका जाननेवाला होताहै ॥ १७ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पतिकी स्थितिका फल कहतेहैं—

कर्म्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे । १८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पति स्थित हो वह पुरुष वेदविहित अग्निष्टोम (यज्ञ) आदि कर्म्मकाण्डका जाननेवाला उपनिषद् ब्रह्म सूत्रादि प्रतिपादित ज्ञानको ग्रहण करनेवाला तथा वेदवेत्ता होताहै ॥ १८ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित शुक्रका फल लिखतेहैं—

राजकीयाः कामिनः शतेन्द्रियाश्च शुक्रे । १९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शुक्र

स्थित हो वह पुरुष किसी राजकार्य्यका अधिकार पाता है, अनेक स्त्रियोंसे भोगविलासकी इच्छा करनेवाला होता है, और उस पुरुषकी इन्द्रियोंकी वृत्ति सौ वर्षपर्य्यन्त शिथिल नहीं होतीहै अर्थात् वह पुरुष सौ वर्षपर्य्यन्त जीताहै ॥१९॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित शनिका फल लिखते हैं—

प्रसिद्धकर्म्माजीवः शनौ । २० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक नवमांशमें शनि स्थित हो वह पुरुष संसारमें प्रसिद्ध कर्म्मके द्वारा आजीविका करता है ॥ २० ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहुका फल लिखते हैं—

धानुष्काश्चौराश्च जाङ्गलिका लोहयन्त्रिणश्च राहौ । २१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें राहु स्थित हो वह पुरुष धनुष बनानेवाला या धारण करनेवाला होताहै, चोर होताहै, अथवा वनमें रहनेवाला और ताला आदि लोहेका यन्त्र बनानेवाला होता है ॥ २१ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका फल लिखते हैं—

गजव्यवहारिणश्चौराश्च केतौ । २२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें केतु स्थित हो वह पुरुष हस्तियोंका व्यवहार करताहै, और चोरी करनेमें तत्पर रहताहै ॥ २२ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें एक साथ पड़ेहुए सूर्य्य और राहुका फल लिखते हैं—

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् । २३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्य्य और राहु, सङ्ग स्थित हों वह पुरुष सर्पके द्वारा मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें एक सङ्ग स्थित सूर्य्य राहुके फलमें विशेषता लिखतेहैं—

शुभदृष्टे सन्निवृत्तिः । २४ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य राहुको यदि शुभग्रह देखता हो तौ उस पुरुषकी सर्पसे मृत्यु नहीं होतीहै ॥ २४ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य राहुको शुभग्रहका योग होनेपर विशेषता लिखतेहैं—

शुभमात्रसंयोगाज्जाङ्गलिकः । २५ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य और राहुको यदि शुभमात्र ग्रहका योग होय तौ वह पुरुष विषवैद्य अर्थात् सर्पके विषको दूर करनेकी विद्याका जाननेवाला होताहै ॥ २५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहु सूर्य्यको मङ्गलकी दृष्टि होय तौ विशेष फल—

कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा । २६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य और राहुको यदि मङ्गलमात्र देखता होय तौ वह पुरुष अपने घरको जलादेता है अथवा पराये घरमें अग्नि देताहै २६

× यहां मात्रशब्द इसकारण दियाहै कि शुभग्रहमात्रकोही दृष्टि हो पापग्रहका दृष्टि न होय ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य और राहुको शुक्रकी दृष्टि होय तौ विशेष फल—

शुक्रदृष्टेर्नदाहः । २७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य और राहुको शुक्र देखता होय तौ वह पुरुष अपने गृहमें अग्नि नहीं देता है परगृहमें अग्नि देता है ॥ २७ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहु केतुको बृहस्पतिकी दृष्टि होय तौ विशेष फल—

गुरुदृष्टेस्त्वासमीपगृहात् । २८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य्य और राहुको गुरु देखता हो तौ वह अपने गृहको छोड़कर समीपके सम्पूर्ण गृहोंको जलादेता है ॥ २८ ॥

आत्मकारकके नवमांशको गुलिकका योग होनेपर फल लिखते हैं—

सगुलिके विपदो विपहतो वा । २९ ।

अर्थ—जिसके आत्मकारकके नवमांशको गुळिक योग हो वह पुरुष अन्य पुरुषको विष देताहै अथवा अपने आप विषभक्षण करके मरजाता है । गुळिकके जाननेकी रीति वृद्धकारिकाके अनुसार लिखतेहैं—

रविवारादिशन्यन्तं गुळिकादि निरूप्यते ।
दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्गणयेत्क्रमात् ॥
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुळिकः स्मृतः।
रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात्पञ्चमादितः ॥

गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तितः ।
शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशे यमघण्टकः ॥
भौमांशे मृत्युरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः ।
सौम्यांशेऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्म्मप्रदेशकः ॥

अर्थ—सूर्य्यसे लेकर शनैश्चरपर्य्यन्त गुलिक आदि संज्ञा कहते हैं–दिनके आठ भाग करै, उस दिनका जो स्वामी हो उसको पहले भागका स्वामी जाने फिर इसी क्रमसे शेष भागोंके स्वामी होतेहैं। उसमें शनैश्चरका भाग गुलिक कहलाता है और आठवें भागका कोई स्वामी नहीं होताहै । (जैसे रविवारके आठ भाग किये. उसमें प्रथम भागका स्वामी सूर्य्य (वर्त्तमान वारेश) होयगा, द्वितीय भागका स्वामी चन्द्रमा तृतीय भागका स्वामी मङ्गल, चतुर्थ भागका स्वामी बुध, पञ्चम भागका स्वामी बृहस्पति, षष्ठ भागका स्वामी शुक्र, सप्तम भागका स्वामी शनैश्चर, अष्टम भाग शून्य, यहां शनिका सप्तम भाग गुलिक कहलाता है, इस प्रकार रविका सप्तम भाग गुलिक होताहै. सोमका षष्ठ भाग गुलिक होताहै. मङ्गलका पञ्चम भाग गुलिक होताहै. बुधका चतुर्थ भाग गुलिक होताहै. बृहस्पतिका तृतीय भाग गुलिक होताहै. शुक्रका द्वितीय भाग गुलिक होताहै. शनिका प्रथम भाग गुलिक होताहै. रात्रिकेभी आठ भाग करै, इतनी दिनके गुलिककी अपेक्षा विशेषता होतीहै कि उस दिनका जो स्वामी हो उससे पाँचवाँ वारेश प्रथम भागका स्वामी होताहै, इत्यादि क्रमसेही अन्य भागोंके स्वामीभी होतेहैं । शनैश्चरका भाग गुलिक कहलाता है, रात्रिमेंभी अष्टम भाग निरीश होताहै ॥ और रात्रिमें तथा दिनमेंभी आठों भागोंमेंसे शनिका भाग

गुलिक कहलाता है. रात्रिमें रविवारके दिन तृतीय खण्ड गुलिक कहलाताहै. सोमका द्वितीय खण्ड. मङ्गलका प्रथम खण्ड. बुधका सप्तम खण्ड. बृहस्पतिका षष्ठ खण्ड. शुक्रका पञ्चम खण्ड. शनिका चतुर्थ खण्ड गुलिक कहलाताहै । इस प्रकार सम्पूर्ण दिन और रात्रियोंमें शनिका भाग गुलिक कहलाताहै. बृहस्पतिका भाग यमघण्ट कहलाताहै. मङ्गलका भाग मृत्यु कहलाता है. रविका भाग काल कहलाताहै. बुधका भाग अद्यप्रहरक कहलाताहै । अपने २ देशकी लग्नके प्रमाणानुसार गुलिकखण्डपर्य्यन्त लग्न स्पष्ट करके उसमें जो अंश आवे वही गुलिक कहलाताहै ॥ २९ ॥

आत्मकारकके नवमांशके सहित गुलिक हो उसका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ चौरापहृतधनश्चौरो वा । ३० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहका नवमांश गुगुलिकसहित हो और उसको चन्द्रमा देखता हो तो उस पुरुषके धनकी चोरी होजाती है अथवा वह पुरुष अपने आप ोर होताहै ॥ ३० ॥

आत्मकारकके नवमांशके सहित गुलिक हो और उसको बुध देखता होय तहाँ फल कहते हैं—

बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः । ३१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक नवमांश गुलिकसहित हो और उसको बुधके सिवाय अन्य ग्रह न देखता होय तो वह पुरुष दीर्घ अण्डकोशवाला होताहै अर्थात् उसके पोते बढ जातेहैं ॥ ३१ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका फल लिखते हैं—

तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगो वा । ३२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारककी नवांशकुण्डलीमें स्थित केतुको पापग्रह देखते हों उस पुरुषका कान कट जाता है अथवा कानमें रोग होताहै ॥ ३२ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका विशेष फल लिखते हैं—

शुक्रदृष्टे दीक्षितः । ३३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारककी नवमांशकुण्डलीमें स्थित केतुको शुक्र देखता हो वह पुरुष यज्ञ आदिकी दीक्षा धारण करनेवाला होताहै ॥ ३३ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका और विशेष फल—

बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः । ३४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको बुध और शनैश्चर दोनो देखते हों वह पुरुष नपुंसक होताहै ॥ ३४ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका दृष्टिवशतः और विशेष फल लिखतेहैं—

बुधशुक्रदृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा २५

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको बुध और शुक्र देखते होंय तो वह पुरुष एकही बातांके

वारम्वार कहनेवाला (पुनरुक्तवक्ता) होताहै• अथवा दासीका पुत्र होताहै ॥ ३५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको शनिदृष्टिका फल—

शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा । ३६ ।

अर्थ—जिस पुरुपके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको अन्य ग्रहोंकी दृष्टि होनेपरभी यदि शनि देखता होय वह पुरुष तप करनेवाला होताहै, और दूत सेवक आदिका काम करताहै ॥ ३६ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको शनिमात्रकी दृष्टिका फल—

शनिमात्रदृष्टे संन्यासाभासः । ३७ ।

अर्थ—जिस पुरुपके आत्मकारककी नवमांशकुण्डलीमें स्थित केतुको शनिके सिवाय अन्यग्रह न देखता होय केवल शनिही देखता होय तो वह पुरुष निन्दित संन्यासी होताहै अर्थात् वह पुरुष कारणवश केवल संन्यासियोंकेसे वेष वना लेता है शास्त्रके अनुसार संन्यासियोंके कर्म्म नहीं करताहै ३७

आत्मकारकके नवमांशपर सूर्य्य शुक्रकी दृष्टिका फल लिखतेहैं—

तत्र रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः । ३८ ।

अर्थ—जिस पुरुपके आत्मकारकके नवमांशपर सूर्य्य और शुक्रकी दृष्टि पड़ती हो वह पुरुष राजाका दूत सेवक आदि होताहै ॥ ३८ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशके दशमांशको अवलम्बन कर फल लिखतेहैं—

तहाँ प्रथम बुधका फल—

रिःफे बुधे बुधदृष्टे वा मन्दवत् । ३९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें बुध स्थित हो अथवा बुधकी दृष्टि हो तौ वह पुरुष "प्रसिद्धकर्म्माजीवः शनौ" इस सूत्रके अनुसार फलको प्राप्त होताहै, अर्थात् संसारमें प्रसिद्धकर्म्मके द्वारा आजीविका करताहै ॥

तहाँ शुभग्रहकी दृष्टिका फल—

शुभदृष्टे स्थेयः । ४० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें बुधको छोड़कर, अन्य किसी शुभग्रहकी दृष्टि होय तौ वह पुरुष स्थिरस्वभाव होताहै ॥ ४० ॥

तहाँ आत्मकारकके [illegible] बृहस्पतिकी दृष्टिका फल—

रवौ गुरुमात्रदृष्टे गोपालः । ४१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें सूर्य्य स्थित हो और अन्य ग्रहोंको छोड़कर केवल बृहस्पतिकी दृष्टि हो तो वह पुरुष गौओंकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ ४१ ॥

आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि तथा योगका फल लिखते हैं—

दारे चन्द्रशुक्रदृग्योगात्प्रासादः । ४२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि हो अथवा योग

हो तौ वह पुरुष महलोंके स्थानवाला होताहै ॥ ४२ ॥

तहाँ उच्चस्थानके ग्रहकी स्थितिका फल लिखते हैं—

उच्चग्रहेऽपि । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे नवमांशमें उच्च स्थानका ग्रह स्थित हो वह पुरुषभी महलोंके स्थानवाला होताहै ॥ ४३ ॥

तहाँ राहु और शनैश्चरकी स्थितिका फल लिखते हैं—

राहुशनिभ्यां शिलागृहम् । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें राहु और शनि स्थित हों तौ उस पुरुषके शिलाओंका बनाहुआ स्थान होता है ॥ ४४ ॥

तहाँ मङ्गल और केतुकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

कुजकेतुभ्यामैष्टकम् । ४५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गल और केतु स्थित हों वह पुरुष ईंटोंके बनेहुए स्थानवाला होताहै ॥ ४५ ॥

तहाँ बृहस्पतिकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

गुरुणा दारवम् । ४६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे नवमांशमें बृहस्पति स्थित हो उस पुरुषके काष्ठका स्थान होताहै ॥ ४६ ॥

तहाँ सूर्य्यकी स्थितिका फल लिखते हैं—

तार्णं रविणा । ४७.

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें सूर्य्य स्थित हों उस पुरुषके तृणोंका स्थान होताहै ४७

अब कारकांशसे नवम नवमांशके फल कहनेका प्रारम्भ करते हुए प्रथम शुभ ग्रहके योग और दृष्टिका फल लिखते हैं

समे शुभदृग्योगाद्धर्म्मनित्यः सत्यवादी गुरुभक्तश्च । ४८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नौमें नवमांशमें शुभ ग्रह स्थित हों या शुभग्रहका योग हो वह पुरुष निरन्तर धर्म्म करनेवाला होताहै, सत्यवादी होताहै, गुरुका भक्त होताहै ॥ ४८ ॥

तहाँ पापग्रहोंके योग तथा दृष्टिका फल कहते हैं—

अन्यथा पापैः । ४९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें पापग्रह स्थित हों अथवा पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उस पुरुषको उपरोक्त फलके विपरीत फल होताहै अर्थात् वह पुरुष निरन्तर अधर्म्म करताहै, असत्यवादी होताहै; गुरुद्रोही होताहै ॥ ४९ ॥

तहाँ शनैश्चर और राहुकी स्थितिका फल लिखते हैं—

शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः । ५० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें शनैश्चर और राहु स्थित हों अथवा देखते हों तो वह पुरुष गुरुसे विरोध करनेवाला होताहै ॥ ५० ॥

तहाँ सूर्य्य और बृहस्पतिकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

गुरुरविभ्यां गुरावविश्वासः। ५१।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें बृहस्पति और सूर्य्य स्थित हों अथवा देखतेहों तौ वह पुरुष गुरुके विषे विश्वास नहीं करताहै।

वहाँ शुक्र और मङ्गलका फल—

तत्र भृग्वङ्गारकवर्गे पारदारिकः। ५२।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें शुक्र और मङ्गलका षड्वर्ग हो वह पुरुष परस्त्रीगमन करताहै ॥ ५२ ॥

वहाँ शुक्र और मङ्गलकी दृष्टि तथा योगका फल—

दृग्योगाभ्यामधिकाभ्यामामरणम्। ५३।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें मङ्गल या शुक्रका योग हो अथवा दृष्टि हो तौ वह पुरुष मरणपर्य्यन्त परस्त्रीगमन करताहै ॥ ५३ ॥

ऊपरोक्त फलकी निवृत्ति लिखतेहैं—

केतुना प्रतिबन्धः। ५४।

अर्थ—जिसके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें शुक्र और मङ्गलका षड्वर्ग और दृष्टि तथा योग होनेपर; यदि केतु स्थित होय या देखता होय तौ विपरीत फल होताहै; अर्थात् मरणपर्य्यन्त कदापि परस्त्रीगामी नहीं होताहै ॥५४॥

वहाँ बृहस्पतिकी स्थितिआदिका फल—

गुरुणा स्त्रैणः। ५५।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम

नवमांशमें बृहस्पति स्थित हों अथवा बृहस्पतिकी दृष्टि होय तौ वह पुरुष स्त्रीके वशमें होताहै ॥ ५५ ॥

तहाँ राहुकी स्थिति आदिका फल लिखतेहैं—

राहुणार्थनिवृत्तिः । ५६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें राहु स्थित हो अथवा राहुकी दृष्टि हो तौ उस पुरुषके धनकी परस्त्रियोंके द्वारा हानि होतीहै ॥ ५६ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशका फल कहनेको प्रारम्भ करते हुए प्रथम चन्द्रमा और बृहस्पतिका फल लिखते हैं—

लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी । ५७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें चन्द्रमा और बृहस्पति स्थित हों उस पुरुषकी स्त्री रूपवती होतीहै ॥ ५७ ॥

तहाँ राहुकी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुणा विधवा । ५८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें राहुकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री विधवा होतीहै अर्थात् वह विधवा स्त्रीका पति होताहै, अर्थात् अन्य पुरुषकी विधवा स्त्रीको अपने घरमें रखकर उसका पति होताहै५८

तहाँ शनिकी स्थितिका फल कहतेहैं—

शनिना वयोऽधिका रोगिणी तपस्विनी वा । ५९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें शनिकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री अवस्थामें अधिक अर्थात् पुरुषकी अपेक्षा अधिक अवस्थावाली होतीहै, रोगिणी होतीहै, तथा तपस्या करनेवाली (सुचरित्रा) होतीहै ॥ ५९ ॥

तहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहतेहैं—

कुजेन विकलाङ्गी । ६० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें कुज कहिये मङ्गलकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्रीका कोई अङ्ग हीन होताहै ॥ ६० ॥

तहाँ सूर्यकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविणा स्वकुले गुप्ता च । ६१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्यकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री मरणपर्यन्त पतिके घरमेंही रक्षित रहतीहै अर्थात् स्वतन्त्रतासे इधर उधर फिरनेवाली दुश्चारिणी नहीं होतीहै और (चकारसे) किसी अङ्गकरके हीनभी होतीहै ॥ ६१ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका विशेष फल कहतेहैं—

बुधेन कलावती । ६२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें बुधकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री कलाओंको जाननेवाली अर्थात् गाने बजानेआदिमें अतिप्रवीण होतीहै ६२

तहाँ चंद्रमाकी स्थितिका विशेष फल कहतेहैं—

चापे चन्द्रेणानावृतदेशे । ६३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ, मांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो उस पुरुषका प्रथम स्त्रीसङ्गम हुए स्थानमें होताहै ॥ ६३ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे तृतीयनवमांशमें स्थित पापग्रहोंका फल कहते हैं—

कर्म्मणि पापे शूरः । ६४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें पापग्रहकी स्थिति हो वह पुरुष पराक्रमी होताहै ६४

आत्मकारके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें स्थित शुभग्रहका फल कहते हैं—

शुभे कातरः । ६५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें शुभग्रहकी स्थिति हो, वह पुरुष कातर (कायर–डरपोक) होताहै ॥ ६५ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय और षष्ठ दोनों स्थानोंमें स्थित ग्रहोंका फल कहते हैं–वहाँ पापग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः । ६६ ।

* कोई 'चापे धनुषि' ऐसा मानकर यह अर्थ करते हैं कि जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें धनराशिस्थ चन्द्रमाकी स्थिति हो उस पुरुषका उक्त फल होताहै ॥ + यहां "मृत्यु" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार तृतीय नवमांशका बोध होताहै ॥ × यहां "चिन्ता" शब्दसे (क ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार षष्ठ नवमांशका बोध होताहै ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय नवमांश और षष्ठ नवमांश इन दोनोंमें पापग्रहोंकी स्थिति हो वह पुरुष खेती करनेका कार करताहै ॥ ६६ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें स्थित गुरुका फल कहते हैं—

समे* गुरौ विशेषेण । ६७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवम... नवमांशमें गुरुकी स्थिति हो वह पुरुष विशेषतः खेतीका कार करनेवाला होताहै ॥ ६७ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश नवमांशमें स्थित शुभग्रहका फल कहते हैं—

उच्चे+ शुभे शुभलोकप्राप्तिः । ६८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश (बारहवें) नवमांशमें शुभ ग्रहकी स्थिति हो उस पुरुषको शुभलोकों (स्वर्गलोक ब्रह्मलोकादि)की प्राप्ति होतीहै ॥ ६८ ॥

वहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतौ कैवल्यम् । ६९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश नवमांशमें केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति

---

* यहां "सम" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार नवम नवमांशका बोध होताहै ॥ + यहां "उच्च" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार बारहवें नवमांशका बोध होताहै ॥ यहांसे लेके "उच्चे शुभे शुभलोकप्राप्ति" इससे "पापैरन्यथा" इससूत्रतक उच्च शब्दकी अनुवृत्ति होतीहै ॥

होतीहै ॥ ६९ ॥ मेष धन सम्बन्धी कारकांशमें शुभग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

क्रियचापयोर्विशेषेण× । ७० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशका क्रिय कहिये मेष और चाप कहिये धनसे सम्बन्ध हो और उसमें शुभग्रहकी स्थिति हो तो उस पुरुषको विशेषतः सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७० ॥

पूर्वोक्त योगमें पापग्रहका फल कहते हैं—

पापैरन्यथा । ७१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे बारहवें नवमांशमें पापग्रहकी स्थिति हो उस पुरुषको शुभलोककी प्राप्ति नहीं होतीहै और मुक्तिभी नहीं होती है ॥ ७१ ॥ आत्मकारकके नवमांशमें स्थित ग्रहोंका फल कहनेका प्रारम्भ करतेहुये प्रथम सूर्य्य और केतुकी स्थितिका फल कहतेहैं—

× कोई ऐसा अर्थ कहते हैं कि जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे बारहवां नवमांश मेष और धनका सम्बन्धी हो और उसमें केतुकी स्थिति हो तो विशेषतः मुक्तिकी प्राप्ति होती है। परन्तु वास्तवमें पूर्वोक्त अर्थही युक्तियुक्त प्रतीत होताहै क्योंकि शुभग्रहोंकी अपेक्षा केतु मुक्तिफलदायक नहीं होसक्ता। यदि कहो कि जैमिनि मुनिने केतुभी शुभग्रह कहा है सो कहना नहीं बनसक्ता क्योंकि 'अत्र शुभः केतुः' इस सूत्रमें जो केतुको शुभत्व कहा है सो सार्वत्रिक नहीं है किन्तु अत्र शब्दसे यह ध्वनि निकलती है कि 'अत्र शुभः केतुः' इस सूत्रके आगेके सूत्रमेंही केतुको शुभत्व अन्यत्र नहीं ॥

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः । ७२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्य्य और केतु स्थित हों वह पुरुष शिवके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७२ ॥

तहाँ चन्द्रमा और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

चन्द्रेण गौर्य्याम् । ७३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रम और केतु स्थित हों वह पुरुष गौरी (देवी) के विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७३ ॥

तहाँ शुक्र और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

शुक्रेण लक्ष्म्याम् । ७४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शुक्र और केतुकी स्थिति हो वह पुरुष लक्ष्मीके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७४ ॥

तहाँ मंगल और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन स्कन्दे । ७५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें मंगल और केतु यह दोनों स्थित हों उस पुरुषकी स्वामिकार्तिकेयके विषे भक्ति होती है ॥ ७५ ॥

तहाँ बुध, शनि, और केतु इन तीनोंकी स्थितिका फल कहते हैं—

यहांसे लेकर 'अमात्यदासे चैवम्' इस सूत्र पर्य्यन्त सम्पूर्ण सूत्रोंमें 'रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः' इस सूत्रमेंसे केतु पदका अनुवृत्ति होती है॥

बुधशनिभ्यां विष्णौ । ७६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शनैश्चर, बुध, और केतु यह तीनों ग्रह स्थित हों वह पुरुष विष्णुके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७६ ॥

तहाँ गुरु और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा साम्बशिवे । ७७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पति और केतु दोनों ग्रह स्थित हों वह पुरुष शिव और पार्वती इन दोनों देवताओंके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७७ ॥

तहाँ राहु और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुणा तामस्यां दुर्गायाञ्च । ७८ ।

जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें राहु और केतु दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो वह पुरुष भद्रकालीका तथा अन्य तामसी भूतप्रेतादिदेवताओंकाभी भक्त होता है ॥ ७८ ॥

तहाँ केवल केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना गणेशे स्कन्दे च । ७९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें केवल इकला केतुही स्थित हो वह पुरुष गणेशके विषे तथा स्वामिकार्तिकेयके विषेभी भक्ति करता है ॥ ७९ ॥

तहाँ शनि और केतुकी स्थितिका विशेष फल कहते हैं—

पापर्क्षे मन्दे क्षुद्रदेवतासु । ८० ।

जिस पुरुषके आत्मकारकका नवमांश पापराशिसम्बन्धी हो और उसमें शनि और केतु इन दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो

तो वह पुरुष कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवताओंके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८० ॥

यहाँ शुक्र और केतुकी स्थितिका विशेप फल कहते हैं—

शुक्रे च । ८१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकका नवमांश पापराशिका सम्बन्धी हो और उसमें शुक्र और केतु इन दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो तो वह पुरुषभी कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवताओंकेविषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८१ ॥

ऊपर ऐसा कहाहै कि आत्मकारक ग्रहकी अपेक्षा जिस ग्रहके अंश कला आदि न्यून हों वह ग्रह अमात्यकारक कहलाता है उस अमात्यकारकसे षष्ठग्रहका फल कहते हैं—

अमात्यदासे चैवम् । ८२ ।

अर्थ—*अमात्यकारककी अपेक्षा दास अर्थात् अमात्यकारकसे छठांग्रह जिस पुरुषके पापराशिसम्बन्धी आत्मकारकके नवमांशमें स्थित हो उस पुरुषकोभी उक्त फल होता है, अर्थात् वह पुरुषभी कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवताओंके विषेही भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८२ ॥

---

* कोई ऐसा कहते हैं कि यह अर्थ सूत्रकारके संमत नहीं है, यदि यह संमत होता तो सूत्रकार 'पापर्क्षे' आदि तीनों सूत्रोंके स्थानमें "पापर्क्षेमन्दशुक्रामात्यदासेषुक्षुद्रदेवतासु" ऐसी सूत्ररचना करते यह कहना ठीक नहीं है.क्योंकि यदि ऐसी सूत्ररचना होती तो शनि और शुक्र तथा अमात्यकारकसे छठा ग्रह इन तीनोंके एक साथ पापराशिसम्बन्धी आत्मकारकके नवमांशमें स्थित होनेसे उक्तफल होता, और होता तो है प्रत्येक ग्रहके पूर्वोक्त योग होनेपर, इसकारण तीनों सूत्रोंको पृथक् रचना ही युक्ति युक्त है ॥

तीह

कारकांशसे नवम और पञ्चमनवमांशमें स्थित ग्रहोंका फल कहते हैं—

त्रिकोणे पापद्वये मांत्रिकः । ८३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों अर्थात् दोनोंमें एक एक ग्रहकी स्थिति हो वह पुरुष मांत्रिक अर्थात् मंत्रशास्त्रका जाननेवाला होताहै ॥ ८३ ॥

तहाँ पापग्रहकी दृष्टिका फल कहते हैं—

पापदृष्टे निग्राहकः । ८४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों और दोनोंके ऊपर पापग्रहोंकी दृष्टिभी हो तौ वह पुरुष निग्राहक अर्थात् अन्यपुरुषके ऊपर चढ़ेहुये भूतादिको वशमें करके दूर करनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

वहाँ शुभग्रहकी दृष्टिका फल कहते हैं—

शुभदृष्टेऽनुग्राहकः । ८५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांश और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों और दोनोंके ऊपर शुभग्रहोंकी दृष्टिभी हो तौ वह पुरुष सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाला होता है ॥ ८५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रस्थिति होनेपर शुक्रदृष्टिका फल—

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी । ८६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको शुक्रकी दृष्टि हो तौ वह पुरुष रसोंको जानता है ॥ ८६ ॥

तहाँ बुधकी दृष्टिका फल कहते हैं—

बुधदृष्टे भिषक् । ८७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्र इन दोनोंकी स्थिति हो और शुक्रकी दृष्टि हो तौ वह पुरुष वैद्यक जाननेवाला होता है ॥ ८७ ॥

आत्मकारकांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रस्थितिहोनेपर शुक्रदृष्टिका फल कहते हैं—

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पाण्डुश्वित्री । ८८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको शुक्रकी दृष्टि हो तौ उस पुरुषके शरीरमें श्वेत कुष्ठ होता है ॥ ८८ ॥

तहाँ मङ्गलकी दृष्टिका फल कहते हैं—

कुजदृष्टे महारोगः । ८९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको मङ्गल देखता होय तौ उस पुरुषके शरीरमें महाकुष्ठ (गलितकुष्ठादि) होते हैं ॥

तहाँ केतुकी दृष्टिका फल कहते हैं—

× यहांसे लेके "तत्र मृतावित्यादि" सूत्रमेंसे "राहु गुलिकाभ्यामित्यादि" सूत्रतक मृतिपदकी अनुवृत्ति होती है ॥ * यहां 'चाप' शब्दसे (क. ट. प य) आदि वर्णोंकी सख्याके अनुसार चतुर्थ नवमांशका बोध होता है ॥

*केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् । ९० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको केतु देखता होय तौ उस पुरुषके शरीरमें नीलकुष्ठ होता है ॥ ९० ॥

कारकांशसे चतुर्थमें और पञ्चममें मङ्गल राहु हों तिसका फल—

तत्र स्मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः । ९१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें या पञ्चम नवमांशमें मङ्गल और राहु दोनों स्थित हों उस पुरुषके क्षयीरोग होता है ॥ ९१ ॥

तहाँ चन्द्रमाकी दृष्टिका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन । ९२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गल और राहु दोनोंकी स्थिति हो और तिसपरभी चन्द्रमाकी दृष्टि होय तौ उस पुरुषको अवश्यही क्षयीरोग होता है—

यहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन पिटकादिः । ९३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे या पांचवें नवमांशमें मङ्गलकी स्थिति हो उस पुरुषके शरीरमें

---

* यहां "स्मृति" पदसे पञ्चम नवमांशका बोध होता है ॥ + आशय यह है कि यदि चन्द्रमाकी दृष्टि हो तौ मधुर क्षयीरोग होताहै और चन्द्रमाकी दृष्टि न होय तौ क्षयीरोग थोड़ा होताहै ॥

फोड़ा फुंसी आदिक रोग रहता है ॥ ९३ ॥ तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना ग्रहणी जलरोगो वा । ८४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ या पञ्चम नवमांशमें केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको संग्रहणी और जलोदर आदि रोग होते हैं ९४ ॥

तहाँ राहु और गुलिककी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि । ८५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ अथवा पञ्चम नवमांशमें राहु और गुलिककी स्थिति हो उस पुरुषको चूहे आदिके क्षुद्रविषोंका भय होता है ॥ ९५ ॥

अब कारकांश और चतुर्थ नवमांशका फल कहते हैं—

तत्र* शनौ धानुष्कः । ९६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें शनिकी स्थिति हो तौ वह पुरुष धनुषविद्याका जाननेवाला होता है ॥ ९६ ॥

तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना घटिकायन्त्री । ९७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें केतुकी स्थिति हो वह पुरुष घड़ीयन्त्रका बनानेवाला होता है ॥ ९७ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

---

* यहांसे 'शुभौ' इस पदकी निवृत्ति होगई ॥

-बुधेन परमहंसो लगुडी वा । ९८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें बुधकी स्थिति हो वह पुरुष परमहंस होता है अथवा दण्डी (संन्यासी) होता है ॥ ९८ ॥

तहाँ राहुकी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुणा लोहयन्त्री । ९९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें राहुकी स्थिति हो वह पुरुष लोहयन्त्र (अनेक प्रकारकी कल) का जाननेवाला होता है ॥ ९९ ॥

तहाँ सूर्य्यकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविणा खड्गी । १०० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें सूर्य्यकी स्थिति हो वह पुरुष खड्गी अर्थात् तलवार धारण करनेवाला अथवा बनानेवाला होता है ॥ १०० ॥

तहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन कुन्ती । १०१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गलकी स्थिति हो वह पुरुष कुन्त अर्थात् भालेका धारण करनेवाला होता है ॥ १०१ ॥

अथ कारकांशका तथा कारकांशसे पञ्चम नवमांशक फल लिखते हैं—

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृत् । १०२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें यदि चन्द्रमा और बृहस्पतिकी स्थिति हो तौ वह पुरुष, ग्रन्थकृत् अर्थात् ग्रन्थोंकी रचना करनेवाला होता है ॥ १०२ ॥

तहाँ चन्द्रमा और शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

शुक्रेण किंचिदूनम् । १०३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्र* स्थित हों तौ उस पुरुषके ग्रन्थ कर्त्तापनेमें कुछ न्यूनता होती है ॥ १०३ ॥

तहाँ चन्द्रमा और बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

बुधेन ततोऽपि । १०४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें चन्द्रमा और बुध स्थित हों उस पुरुषके ग्रन्थ कर्त्तापनेमें औरभी न्यूनता होती है ॥ १०४ ॥

तहाँ केवल शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

---

* यदि कहो कि सूत्रमे तौ केवल शुक्र पद पढ़ा है चन्द्रकी अनुवृत्ति करनेका क्या प्रयोजन है तहां कहते हैं कि यदि अनुवृत्ति नहीं करेंगे तौ पुनरुक्तिदोष आवेगा क्योंकि केवल शुक्रका फल तौ 'शुक्रेण कवि' इत्यादि आगेके सूत्रमें कहाही है ॥

शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च । १०५ । औ

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें, आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें शुक्रकी हो वह पुरुष काव्योंका वनानेवाला, निडरवोल और काव्य विपयको जाननेवाला होता है ॥ १०५ ॥

तहाँ केवल बृहस्पतिकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा सर्वविद् ग्रन्थिकश्च । १०६ ।

न वाग्मी । १०७ ।

विशिष्य वैयाकरणो वेदवेदाङ्गविच्च ।१०८।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या उस नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें बृहस्पतिकी स्थिति हो वह पुरुष बृहस्पतिकी समान शास्त्रीय सबविषयोंका जाननेवाला तथा ग्रन्थ रचना करनेवाला होता है । परन्तु निडरवोलनेवाला नहीं होता है । और विशेषकरके व्याकरण शास्त्रको जाननेवाला तथा चारों वेद और शिक्षा आदि छः अङ्गोंका जाननेवालाभी होता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

तहाँ शनिकी स्थितिका फल कहते हैं—

सभाजडः शनिना । १०९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें शनैश्चरकी स्थिति हो तो वह पुरुष सभा–जड़ अर्थात् सभामें बोलनेकी शक्तिहीन होता है ॥ १०९ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

ोमांसकः । ११० ।

फल लि ... पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम

मानार्पि ... में बुधकी स्थिति हो वह पुरुष मीमांसक अर्थात् महर्षि

अर्थ—निरुक्त मीमांसा शास्त्रका जाननेवाला होता है ११०

आत्मकार... यहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन नैयायिकः । १११ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें मङ्गलकी स्थिति हो वह पुरुष नैयायिक अर्थात् गोतमसूत्र कणादिसूत्र आदि न्यायशास्त्रका जाननेवाला होवाहै ॥ १११ ॥

यहाँ चन्द्रमाकी स्थितिका फल कहते हैं—

चन्द्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञो गायकश्च । ११२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो वह पुरुष सांख्यशास्त्र (कपिलसूत्रादि) का जाननेवाला, योगशास्त्र (पतञ्जलिकृतसूत्र) का जाननेवाला, साहित्यशास्त्रका जाननेवाला, और गानविद्याकाभी जाननेवाला होता है ॥ ११२ ॥

यहाँ सूर्य्यकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च । ११३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें सूर्य्यकी स्थिति

हो तो वह पुरुष वेदान्त शास्त्र (वेदव्यासकृत ब्रह्मसूत्र और शाङ्करभाष्यादि) का जाननेवाला तथा गीतशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ११३ ॥

तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना गणितज्ञः । ११४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें केतुकी स्थिति हो वह पुरुष गणितशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ११४ ॥

उपरोक्तयोगोंमें गुरुदृष्टिका फल कहते हैं—

गुरुसम्बन्धेन सम्प्रदायसिद्धिः । ११५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें उपरोक्त ग्रहोंके स्थित होनेपर यदि बृहस्पतिकी दृष्टिहो या षड्वर्गादिका सम्बन्धहो तो "अनेक शास्त्रीय मतोंका जाननेवाला होताहै" यह फल अधिक कहना चाहिये ॥ ११५ ॥

अब कारकांशसे द्वितीय नवमांशका फल कहते हैं—

भाग्ये चैवम् । ११६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे भाग्य कहिये द्वितीय नवमांशमें चन्द्र बृहस्पति आदिकी पूर्वानुसार यदि स्थिति होय तोभी उक्त फल (ग्रन्थरचना आदि) फल कहना चाहिये ॥ ११६ ॥

अब कारकांशसे तृतीय नवमांशका फल कहते हैं—

सदा चैवमित्येके । ११७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमे तृतीय

नवमांशमेंभी पूर्वोक्त ग्रहोंकी स्थितिका पूर्वोक्त फल कहना चाहिये ॥ ११७ ॥

कारकांशसे द्वितीय नवमांशमें केतुकी स्थिति और पापदृष्टिका फल कहते हैं—

भाग्ये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् । ११८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशमें केतु स्थित हो और पापग्रहकी दृष्टिहो तौ वह पुरुष स्तब्धवाक् अर्थात् (तोतला होताहै,) अथवा स्तब्धवाक् कहिये शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ होवाहै ॥ ११८ ॥

केमद्रुम योग दिखलातेहैं—

स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये केमद्रुमः । ११९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढपदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले स्थित हों तौ 'केमद्रुम' नाम वाला योगहोवाहै, सोई वृद्ध कारिकामें भी लिखा है—

"आरुढाज्जन्मलग्नाद्वा पापौ स्नोहानिगौ यदि ।
केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ ॥
चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः ।"

× यहां ऐसी शङ्का होतीहै कि स्वपदसे कारकांशका बोध होना चाहिये क्योंकि यहां कारकांशकाही प्रकरण चलरहा है, तहां उत्तर देतेहैं कि यदि यहां कारकांशका बोध करना होता तौ स्वपदका सूत्रमें पाठ करना निरर्थक होजाता क्योंकि कारकांशका बोध तौ केवल पितृ पदसेही होजाता फिरभी स्वशब्दका ग्रहण कियाहै इस कारण उक्त अर्थही ठीक है ॥

अर्थ—अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ़पदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें यदि दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभग्रह स्थित हों, अथवा सम संख्याके शुभ और पापग्रह दोनों स्थित हों तहाँ केमद्रुम योग होताहै और यदि चन्द्रमाकी दृष्टिभी पड़ती होय तब तो विशेष करके केमद्रुम योग होता है ॥

तहां केमद्रुम योगमें चन्द्रदृष्टिका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण । १२० ।

अर्थ—पूर्वोक्तयोगमें चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो विशेष केमद्रुमयोग होता है. अर्थात् अतिदरिद्रयोग होता है ॥१२०॥

सब राशियोंके फलका समय कहते हैं—

सर्वेषां चैव पाके । १२१ ।

अर्थ—सम्पूर्ण राशियोंके फल अपनी अपनी दशामें होतेहैं इसी प्रकार जब केमद्रुमयोग करके राशिकी दशामें दारिद्र्य रूप फल होयगा ॥ १२० ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां
जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां
प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः
समाप्तः

अथ तृतीयः पादः ।

आरूढ कुण्डलीके ग्रहोंका अवलम्बन करके फल कहनेके अर्थ यहाँसे आरूढ पदका अधिकार कहते हैं—

अथ पदम् । १ ।

नवमांशमेंभी पूर्वोक्त ग्रहोंकी स्थितिका पूर्वोक्त फल कहना चाहिय ॥ ११७ ॥

कारकांशसे द्वितीय नवमांशमें केतुकी स्थिति और पापदृष्टिका फल कहते हैं—

भाग्ये केतौ पापदृष्टे: स्तब्धवाक् । ११८ ।

अर्थ—जिस पुरुपके आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशमें केतु स्थित हो और पापग्रहकी दृष्टिहो तो वह पुरुप स्तब्धवाक् अर्थात् (तोतला होताहै,) अथवा स्तब्धवाक् कहिये शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ होताहै ॥ ११८ ॥

केमद्रुम योग दिखलातेहैं—

स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये केमद्रुमः । ११९ ।

अर्थ—जिस पुरुपके अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढपदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले स्थित हों तो 'केमद्रुम'' नाम वाला योगहोताहै, सोई वृद्ध कारिकामें भी लिखा है—

"आरुढाज्जन्मलग्नाद्वा पापौ स्वीहानिगौ यदि ।
केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ ॥
चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः । "

* यहां ऐसी शङ्का होताहै कि स्वपदसे कारकांशका बोध होना चाहिये क्योंकि यहां कारकांशकाही प्रकरण चलरहा है, तहां उत्तरदेतेहैं कि यदि यहां कारकांशका बोध करना होता तो स्वपदका सूत्रमें पाठ करना निरर्थक होजाता क्योंकि कारकांशका बोध तो केवल पितृ पदसेही होजाता फिरभी स्वशब्दका ग्रहण कियाहै इस कारण उक्त अर्थही ठीक है ॥

अर्थ—अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ़-पदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें यदि दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभग्रह स्थित हों, अथवा सम संख्याके शुभ और पापग्रह दोनों स्थित हों वहाँ केमद्रुम योग होताहै और यदि चन्द्रमाकी दृष्टिभी पड़ती होय तब तो विशेष करके केमद्रुम योग होता है ॥

यहां केमद्रुम योगमें चन्द्रदृष्टिका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण । १२० ।

अर्थ—पूर्वोक्तयोगमें चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो विशेष केमद्रुमयोग होता है. अर्थात् अतिदरिद्रयोग होता है ॥१२०॥

सब राशियोंके फलका समय कहते हैं—

सर्वेषां चैव पाके । १२१ ।

अर्थ—सम्पूर्ण राशियोंके फल अपनी अपनी दशामें होवेंहैं इसी प्रकार जब केमद्रुमयोग करके राशिकी दशामें दारिद्र्य रूप फल होयगा ॥ १२० ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां
जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां
प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः
समाप्तः

अथ तृतीयः पादः ।

आरूढ कुण्डलीके ग्रहोंका अवलम्बन करके फल कहनेके अर्थ यहाँसे आरूढ पदका अधिकार कहते हैं—

अथ पदम् । १ ।

अर्थ—यहांसे "यावदाशाश्रयपदमृक्षाणाम्" इस सूत्रमें पहले दिखाये हुए आरूढका अन्य नाम जो पद तिसका अधिकार कहतेहैं ॥ १ ॥

तहाँ प्रथम लग्नारूढपदसे एकादश स्थानका फल कहते हैं—

व्यये सग्रहे ग्रहदृष्टे श्रीमन्तः । २ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे व्यय कहिये एकादश स्थान किसी ग्रहकरके युक्त हों, या उसपर किसी ग्रहकी दृष्टि हो, वह पुरुष सम्पत्तिवाले होते हैं ॥ २ ॥

तहाँ शुभग्रहकी दृष्टि और स्थितिका फल कहते हैं—

शुभैर्न्याय्यो लाभः । ३ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे एकादशस्थानमें शुभग्रह स्थित हों या, शुभग्रहकी दृष्टि होय तौ वह पुरुष न्यायमार्गसे सम्पत्तिकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३ ॥

तहाँ पापग्रहोंकी स्थिति और दृष्टिका फल कहते हैं—

पापैरमार्गेण । ४ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे एकादश स्थान पापग्रहों करकै युक्त हो, या उसपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तौ वह पुरुष शास्त्रोंसे निषिद्ध मार्गसे सम्पत्तिका लाभ करतेहैं, और यदि शुभग्रह और पापग्रह दोनों स्थित हों या दोनों-की दृष्टि हो तौ न्यायमार्गसे और शास्त्रविरुद्ध मार्गसे भी लाभ होता है ॥ ४ ॥

तहाँ उच्चग्रह और स्वग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

उच्चादिभिर्विशेषात् । ५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्न पदसे एकादश स्थानमें उच्च-ग्रह या अपने स्थानका स्वामी स्थित हो या इनकी दृष्टि हो तौ विशेष धनका लाभ होताहै. यदि पापग्रह उंचके होकर स्थित हों, या स्वगृहस्थ होकर स्थितहो तौ पाप वृत्तिसे विशेष धनकी प्राप्ति होतीहै, और यदि उच्चके या स्वगृहस्थ शुभग्रहोंकी स्थिति हो तौ न्यायमार्गसे विशेष धनकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

अब लग्नारूढसे द्वादशस्थानका फल लिखते हैं—

नीचग्रहदृग्योगाद्व्ययाधिक्यम् । ६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढसे द्वादशस्थानमें कोई नीचग्रह स्थित हो और उसको दूसरा ग्रह देखता हो तौ अधिक व्यय होताहै, परन्तु शुभग्रह स्थित हो और उसको शुभग्रह ही देखता हो तौ शुभ कर्म्मोंमें अधिक व्यय होताहै, और यदि पापग्रह स्थित हो या पापग्रहकी दृष्टि हो तौ असत्कर्म्मोंमें अधिक व्यय होता है ॥ ६ ॥

तहां सूर्य राहु और शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविराहुशुक्रैर्नृपात् । ७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढसे द्वादशस्थानमें सूर्य राहु और शुक्र यह सम्पूर्ण एक साथ स्थित हों या अलग२ स्थित हों तौ उस पुरुषको राजद्वारमें व्यय होता है ॥ ७ ॥

वहां सूर्य राहु और शुक्रकी स्थिति होनेपर चन्द्रमाकी दृष्टि होनेपर फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन । ८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादशस्थानमें सूर्य राहु और शुक्र स्थित हों तथा चन्द्रमाकी दृष्टि होय तो निश्चय करके राजद्वारमें व्यय होताहै, अर्थात् चन्द्रमाकी दृष्टि होने-पर निश्चय करके राजद्वारमें व्यय होता है, और यदि चन्द्रमा-की दृष्टि न हो तो राजद्वरमें व्यय होनेका सन्देह होता है ८

तहाँ बुधकी स्थितिका फल लिखते हैं—

बुधेन ज्ञातिभ्यो विवादाद्वा । ९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वादशस्थानमें बुध स्थित हो तो उस पुरुषका जातिके पुरुषोंके निमित्त धनका व्यय होता है ॥ ९ ॥

तहाँ गुरुकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा करमूलात् । १० ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादश स्थानमें बृहस्पति स्थित हो, उस पुरुषका कर देनेमें व्यय होता है ॥ १० ॥

तहां मङ्गल और शनिकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् । ११ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादशस्थानमें मङ्गल और शनिकी स्थिति हो उसका भ्राताके द्वारा व्यय हो-ता है ॥ ११ ॥

अब लग्नारूढ़पदसे एकादशस्थानका फल लिखते हैं—

एतैर्व्यय एवं लाभः । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वादशस्थानमें स्थित ग्रहोंसे जिन २ के द्वारा व्यय कहा है, यदि एकादश स्थानमें उन ग्रहोंकी स्थिति होय तौ उन उनही पुरुषोंके द्वारा लाभ होता है ॥ १२ ॥

अब लग्नपदसे सप्तमस्थानका फल लिखते हैं—

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः । १३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से सप्तमस्थानमें राहु और केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको उदर रोग होता है ॥१४॥

अब लग्नपदसे द्वितीय स्थानका फल लिखते हैं—

तत्र× केतुना झटिति ज्यानि लिङ्गानि । १४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वितीय स्थानमें केतुकी स्थिति हो उस, पुरुषके शीघ्रही वृद्धावस्थाके चिन्ह होजाते हैं १४ ॥

तहाँ चन्द्र गुरु और शुक्रकी स्थितिका फल लिखते हैं—

× कोई 'तत्र' पदसे पूर्वोक्त लाभ पदकी अनुवृत्ति करके ऐसा अर्थ करते हैं कि " लग्नारूढ़से सप्तमस्थानमें केतु स्थित हो तौ वार्द्धक्य चिन्ह होते हैं " परन्तु ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है क्योंकि यदि 'तत्र' पदसे सप्तमस्थानकाही बोध होता तौ सूत्रमे तत्र पदका कोई प्रयोजन नहीं था क्योंकि सप्तमस्थानका फल तो प्रचलितही है । परन्तु सूत्रमे तत्र पदका ग्रहण किया इससे विदित होता है कि यह सप्तम स्थानका फल नहीं कहा है किन्तु तत्र पदमे लभ्य द्वितीय स्थानका फल कहा है । और "चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्त " ऐसा आगेका सूत्र है यदि तत्र पदसे सप्तमस्थानकी अनुवृत्ति करी जायगी तब तो इस सूत्रका अर्थ सङ्गत नहीं होयगा क्यों कि सप्तमस्थानसे तौ धनका विचार होताही नहीं है इस कारण उक्त अर्थही युक्त है ॥

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वितीयस्थानमें चन्द्रमा बृहस्पति और शुक्रकी स्थिति हो वह स्थिति एक दोकी हो या सम्पूर्ण ग्रहोंकी हो तौ वह पुरुष लक्ष्मीवाले होते हैं॥१५॥

तहाँ उच्च ग्रहकी स्थितिका फल लिखते हैं—

उच्चेन वा । १६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वितीयस्थानमें शुभ या पाप कोई ग्रह उच्चका हो कर पड़ा हो तौ वह पुरुषभी लक्ष्मी वाला होता है ॥ १६ ॥

तहाँ फल जाननेमें विशेषता लिखते हैं—

स्वांशवदन्यत्प्रायेण । १७ ।

अर्थ—लग्नपदसे द्वितीयस्थानका और जो फल नहीं कहा है, सो सब आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशके फलकी समान जानना चाहिये अर्थात् जो फल आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशका कहा है वही फल लग्नारूढ़से द्वितीय स्थानका भी जानना ॥ १७ ॥

अब लग्नपदसे केन्द्रस्थान और त्रिकोणस्थानका फल कहते हैं—

लाभपदे केन्द्रत्रिकोणे वा श्रीमन्तः । १८ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके जन्मलग्नपदसे केन्द्रस्थान कहिये प्रथम चतुर्थ और सप्तम तथा दशम स्थानमें और त्रिकोण कहिये पञ्चम तथा नवमस्थानमें यदि लग्नसे सप्तमस्थानका आरूढ़ हो तौ वह पुरुष धनवान् होते हैं ॥ १८ ॥

अन्यथा दुःस्थे ।१९।

अर्थ—जिन पुरुषोंके जन्मलग्नारूढसे षष्ठ अष्टम और द्वादश स्थानमें यदि लग्नसे सप्तम राशिका आरूढ हो तो वह पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १ ॥

लग्नारूढसे केन्द्र त्रिकोण और उपचयस्थानका फल कहते हैं—

केन्द्रे त्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री । २० ।

अर्थ—लग्नसे सातवाँ आरूढ पद यदि केन्द्र (प्रथम-चतुर्थ-सप्तम) में और त्रिकोण (पञ्चम तथा नवमस्थान) में तथा उपचय स्थान (तृतीय-षष्ठ-दशम-और एकादश) में होय तो स्त्री और पतिकी मित्रता होती है। इसी प्रकार यदि लग्नारूढपदसे केन्द्र और त्रिकोण तथा उपचय स्थानमें पुत्रादिभाव आरूढपद हो तो पिता पुत्रादि तिन तिनकी परस्पर मित्रता होती है ! परन्तु यहाँ उपचय स्थानोंमें षष्ठस्थानको छोड़कर अन्यस्थान ग्रहण करना चाहिये क्योंकि आगे । " रिपुरोगचिन्तासु वैरम् " इस सूत्रमें शत्रुता कही है ॥ २० ॥

रिपुरोगचिन्तासु वैरम् ॥ २१ ॥

अर्थ—लग्नारूढ पदसे षष्ठ अष्टम तथा द्वादश स्थानमें जिस२ भावका आरूढ पद हो उस उससे परस्पर शत्रुता होती है जैसे लग्नारूढपदसे पूर्वोक्त स्थानमें सातवें भावका आरूढ पद हो तब स्त्री पुरुषकी परस्पर शत्रुता होती है । इसी प्रकार धन और भ्रातृ आदि भावोंके पूर्वोक्त स्थानमें स्थित होनेपर धन भ्राता और माता आदिमें वैर होता है ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त अर्गलायुक्त लग्नारूढपद और सप्तमारूढपदका फल कहते हैं—

पत्नीलाभयोर्दिष्ट्या+ निराभासार्गलया॥२२॥

अर्थ—जिस पुरुषका जन्मलग्नारूढपद और सप्तमारूढपद निराभास कहिये बाधकरहित जो अर्गला तिसकरके युक्त हो वह पुरुष भाग्यवान् होता है इसी प्रकार प्राचीन कारिकामें भी कहा है—

"यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले ।
तेन द्रेष्टेक्षितं लग्नं प्रावल्यायोपकल्प्यते ॥
यदि पश्येद्ग्रहस्तत्र विपरीतार्गलस्थितः ।"

अर्थ—जिस पुरुषके शुभ अर्गलाके विषे पापग्रह अथवा शुभग्रह स्थित हो और वह लग्नको देखताहोय तौ लग्न प्रबलताको प्राप्त होती है, परन्तु यदि उस लग्नको विपरीत अर्गलाके विषे स्थित कोई ग्रह नहीं देखता होय तौ ॥२२॥

शुभार्गले* धनसमृद्धिः ॥ २३ ॥

अर्थ—परन्तु जिस पुरुषके जन्मलग्नारूढ और सप्तमारूढके विषे शुभ ग्रहोंकरकेही अर्गला होय तौ धनकी अ-

---

+ दिष्ट्येत्याकारान्तः शब्दः । "दिष्ट्या समुपजोषञ्चेत्यानन्दे"-इत्यमरः । अथवा दिष्टमेव दिष्टयं दिष्टं भागधेयं येषां ते दिष्ट्या भाग्यवन्त इत्यर्थः ॥ * यहां शङ्का होती है कि शुभार्गला शब्दसे शुभपापसाधारण निर्बाध अर्गलाका ग्रहण क्यों नहीं होताहै जैसाकि "भयपुण्ये-त्यादि श्लोकमें माना है । तहां कहतेहैं कि यदि इस सूत्रके अर्थमें शुभार्गल शब्दसे शुभपापसाधारणनिर्बाध अर्गलाका ग्रहण करेंगे तौ इस सूत्रका कार्य पूर्वसूत्रसे ही सिद्ध होनेके कारण यह सूत्र व्यर्थ होजायगा ।

त्यन्त वृद्धि होतीहै. इससे यह वार्त्तासिद्धि हुई कि पापग्रहोंकरके अर्गला होय तौ धनकी वृद्धि नहीं होतीहै पहिले सूत्रमें शुभ और पाप दोनोंकी निर्बाध अर्गला करके धनीपनाआदि भाग्यवान् पना कहा था, और इस सूत्रके विषे केवल शुभग्रहमात्रकी अर्गला होनेसे धनकी वृद्धिरूप फल कहा है, अर्थात् यदि शुभग्रहोंकरके अर्गला होय तौ सदा धनकी वृद्धि होतीरहतीहै, और पापग्रहोंकरके पूर्वोक्त अर्गला होय तौ धनवान् मात्र फल होताहै, सदा धनकी वृद्धि नहीं होतीहै और यदि शुभ और पाप दोनोंकरके पूर्वोक्त अर्गला होय तौ कभी धनकी वृद्धि होतीहै और कभी धनकी हानि होती है ॥

अब राजयोग लिखते हैं—

जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टासु राजानः । २४ ।

अर्थ—जन्मलग्न (प्रसिद्ध है), और काललग्न, तथा घटिकालग्न इन तीनोंके और एक किसी ग्रहकी दृष्टि होय तौ वह राजा होवेहैं । यहाँ यह नियम नहीं है कि एकही ग्रह देखता हो, किन्तु यह नियम है कि तीनोंको देखता हो, काललग्नके जाननेकी रीति पहिले कहचुकेहैं । और घटिकालग्न बनानेकी रीति प्राचीनकारिकाओंमें कही है—

"लग्नादेकघटीमात्रं याति लग्नं दिनेदिने ।
परन्तु घटिकालग्नं निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥"

अर्थ—लग्नसे लेकर प्रतिदिन एक एक घटीमें एक एक लग्न व्यतीत होतीहै, इसकारण सूर्य्योदयसे लेकर जितनी

घटिका दिन व्यतीत हुआ हो जन्मलग्नसे लेकर उतनीही लग्न व्यतीत होतीहैं ॥

पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकद्रेक्काणैर्वा। २५।

अर्थ—जिस पुरुपकी जन्मराशिकुण्डली, नवांशकुण्डली, और द्रेष्काणकुण्डलीके विषे लग्न और सप्तम इन दोनों स्थानोंको एकही ग्रह देखता होय तौ यह पुरुप राजा होताहै, द्रेष्काण लानेकी रीति " राशिविभागा " इत्यादि रीतिके अनुसार कह चुकेहैं, तीनों कुण्डलियोंके विषे दो दो स्थानोंपर एकही ग्रहकी दृष्टि कही है, सो इसप्रकार छहों स्थानोंके ऊपर एकही ग्रहकी दृष्टि होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै। यहाँ राशिशब्दसे जन्मकालमें जहाँ चन्द्रमा होय उस राशिका ग्रहण करना लग्नका नहीं ॥ २५ ॥

पूर्वोक्त दोनों राजयोगोंमें कुछ विशेष लिखते हैं—

तेष्वेकस्मिन्न्यूने न्यूनम्। २६।

अर्थ—जन्मलग्न और होरालग्न तथा घटिकालग्न इन तीनोंको कोई एकही उच्च ग्रह देखता होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै, और उनमें यदि दो या एकको देखता होय तौ न्यून राजयोग होताहै, जन्मराशिकुण्डली और द्रेष्काण-कुण्डली तथा नवमांशकुण्डली, इन तीनोंमें लग्न और सप्तम स्थानको कोई एक उच्च ग्रह देखता होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै। और यदि जन्मराशिकुण्डली तथा द्रेष्काणकुण्डली, इन दोनोंके विषे, अथवा जन्मराशिकुण्डली तथा नवमांश-कुण्डली, इन दोनोंके विषे कहीं केवल लग्नको, कहीं केवल सप्तमको, और कहीं दोनोंको कोई एकही ग्रह देखता होय

तो पूर्वोक्तसे न्यून राजयोग होताहै, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंमें उच्च ग्रह या चन्द्रमा अथवा बृहस्पति या शुक्र इनमेंसे कोई स्थित हो और दुष्टार्गला बाधक न हो तो राजयोग, विशेषकरके होता है ॥ २६ ॥

एवमंशतो दृक्काणतश्च । २७ ।

अर्थ—जिसप्रकार "जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टासु राजानः" इस सूत्रके विषे, जन्मलग्न, होरालग्न, और द्रेष्काणलग्न इन तीनोंके ऊपर किसी एक ग्रहकी दृष्टि होनेसे राजयोग होताहै. तिसी प्रकार अंशलग्न, होरालग्न, और घटिकालग्न इन तीनोंके तथा द्रेष्काणलग्न, होरालग्न, और घटिका लग्न इन तीनोंके ऊपर किसी एक ग्रहकी दृष्टि होय तो राजयोग होता है, ॥ २७ ॥

और एक राजयोग अन्यग्रन्थसे संग्रहकरके वृद्धोंने कहा है—

"निशार्द्धाच्च दिनार्द्धाच्च परं सार्द्धद्विनाड़िकाः ।
शुभा तद्भवो राजा धनी वा तत्समोऽपि वा" ॥

अर्थ—रात्रिमें अर्द्धरात्रिके अनन्तर और दिनमें दोपहरके अनन्तर ढाई घटिका शुभ हैं, उस समयमें यदि किसीका जन्म हो तो वह पुरुष राजा होता है, अथवा राजाओंकी समान धनवान् होता है ॥ २७ ॥

अब यानयोग लिखते हैं—

शुक्रचन्द्रयोर्मिथो दृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा यानवन्तः । २८ ।

अर्थ—किसी पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्र और चन्द्रमा जिस किसी स्थानमेंभी स्थित होकर यदि परस्पर देखते हों तौ वह पुरुष सवारीवाला होताहै । और शुक्र तथा चन्द्रमा परस्पर तीसरे स्थानपर स्थित हों तबभी वह पुरुष सवारीवाला होताहै । सोई वृद्धकारिकामेंभी कहा है—

"चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रं पश्यत्यपि तृतीयगे ।
शुक्राचन्द्रे ततः शुक्रे तृतीये वाहनार्थवान्" ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है ॥ २८ ॥

अब वितानादिधारणरूप राजचिह्नयोग कहते हैं—

शुक्रकुजकेतुषु वैतानिकाः । २९ ।

अर्थ—जिसके कुण्डलीके विषे शुक्र, मंगल, और केतु परस्पर दृष्टि करते हों, या परस्पर तृतीय स्थानमें स्थित हों तौ वह पुरुष वितान (छत्र) आदि राजचिह्न धारण करनेवाला होताहै ॥ २९ ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

स्वभाग्यदारमातृभावसमेषु शुभेषु राजानः । ३० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकके स्थानसे द्वितीय या चतुर्थ तथा पञ्चमभावकी राश्यादि शुभग्रहोंकी राश्यादिके तुल्य होंय तौ वह पुरुष राजा होताहै । इसप्रकार सम्पूर्ण कारकोंमें राजयोग होवेहैं इसकारण पुत्रादिकारकोंको राजयोगका बल होनेपर पुत्रादिकोंकोभी राजयोग कहना चाहिये ॥ ३० ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

कर्म*दा+सयोः पापयोश्च । ३१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकसे तृतीय और षष्ठभावकी राश्यादि पापग्रहोंकी राश्यादिके समान हों तौ वह पुरुषभी राजा होताहै ॥ ३१ ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

पित्तलाभाधिपाच्चैवम् । ३२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे और सप्तमेशसे द्वितीय और चतुर्थ तथा पञ्चमभावकी राश्यादि शुभग्रहोंकी राश्यादिके तुल्य होवैं अथवा तृतीय और षष्ठभावकी राश्यादि पापग्रहोंकी राश्यादिके समान हों तबभी वह पुरुष राजा होता है ॥ ३२ ॥

अब राजसम योग कहते हैं—

मिश्रे समाः । ३३ ।

अर्थ—यदि तिन दोनों राजयोगोंके विषे शुभग्रहके स्थानमें पापग्रह हो, और पापग्रहके स्थानमें शुभ ग्रह हों अर्थात् दोनों योगोंमें शुभग्रह और पापग्रह दोनों मिश्रित हों तौ राजसम योग होताहै, अर्थात् वह पुरुष राजाकी तुल्य होता है ॥ ३३ ॥

अब दरिद्रयोग कहते हैं—

दारिद्रा विपरीते । ३४ ।

---

* यहां "कर्म" पदसे (क ट प य) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार तृतीयभावका बोध होता है. + "दास" पदसेभी षष्ठ भावका बोध होता है.

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे पूर्वोक्त दोनों योगोंमें शुभग्रहोंके स्थानमें पापग्रह और पापग्रहोंके स्थानमें शुभग्रहही हों अर्थात् शुभग्रह और पापग्रह विपरीततासे स्थित हों तौ वह पुरुष दरिद्र होताहै ॥ ३४ ॥

अब राजकार्याधिकारयोगकहते हैं—

मातरि गुरौ शुक्रे चन्द्रे वा राजकीयाः। ३५।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे जन्मलग्नेशके स्थानसे अथवा सप्तमेशके स्थानसे पञ्चमस्थानके विषे बृहस्पति, या शुक्र अथवा चन्द्रमा इन तीनोंमें कोई एक अथवा तीनो ग्रह स्थित हों तौ वह पुरुष किसी राजकीय कार्य्यका अधिकारी होताहै ॥ ३५ ॥

अब सेनापतियोग लिखते हैं—

कर्म्मणि दासे वा पापे सेनान्यः। ३६।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेशके अथवा सप्तमेशके स्थानसे तृतीय और षष्ठ स्थानमें पापग्रह स्थित हो तौ वह पुरुष सेनापति होता है ॥ ३६ ॥

अब बुद्धियोग लिखते हैं—

स्वपितृभ्यां कर्मदासस्थदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः। ३७।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकसे अथवा लग्नसे तृतीय अथवा षष्ठ स्थानमें स्थित ग्रह आत्मकारकको या लग्नको देखता हो अथवा तृतीयस्थानका स्वामी या षष्ठस्थानका स्वामी आत्मकारक या लग्नको देखता है

अथवा पञ्चमस्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता होय तौ वह पुरुष बुद्धिमान होता है ॥ ३७ ॥

अब सुखयोग लिखते हैं—

दारेशदृष्ट्या सुखिनः। ३८।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक और लग्नसे चतुर्थस्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नकारकको देखता होय तौ वह पुरुष सुखी होता है ॥ ३८ ॥

अब दरिद्रयोग कहते हैं—

रोगेशदृष्ट्या दरिद्राः। ३९।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकसे और लग्नसे अष्टम स्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता होय तौ वह पुरुष दरिद्र होताहै ॥ ३९ ॥

अब व्ययशीलयोग लिखते हैं—

रिपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः। ४०।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकसे और लग्नसे द्वादश स्थानका स्वामी आत्मकारकको और लग्नको देखता होय तौ वह पुरुष अधिक व्यय करनेवाला होता है ॥ ४० ॥

अब बलयोग लिखते हैं—

स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः। ४१।

+ यहां (" रोग " पदसे (क. ट. प. य.) आदिवर्णोकी संख्याके अनुसार अष्टम स्थानका बोध होता है. × यहां ('रिपु' शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोकी संख्याके अनुसार द्वादशस्थानका बोध होता है.

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेश लग्नको देखता हो या कारकाश्रित राशीश कारकको देखता होय तौ वह पुरुष अत्यन्त बलवान होता है ॥ ४१ ॥

अब आरविपोग लिखतेहैं—

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्ये बन्धः कोणयोरिपुजाययोः कीटयुग्मयोर्दाररिष्फयोश्च । ४२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नसे द्वितीय स्थानके विषे, द्वादशस्थानके विषे, और पञ्चमस्थानके विषे, तथा नवमस्थानके विषे, और द्वादश स्थानके विषे तथा षष्ठ स्थानके विषे, और एकादशस्थानके विषे, तथा तृतीयस्थानके विषे और चतुर्थस्थानके विषे तथा दशमस्थानके विषे ग्रह समानसंख्याके हों तौ वह पुरुष कारागार (जेलखाने) के विषे बन्धनको प्राप्त होता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंको शुभ ग्रह देखते हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका शुभ ग्रहोंसे सम्बन्ध हो तौ वह पुरुष केवल राजकीय पुरुषोंकरके पकड़ा जाता है दुःख नहीं भोगना पड़ता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे पापग्रह स्थित हों, या पूर्वोक्त स्थानोंको पापग्रह देखते हों, या पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका पापग्रहोंसे सम्बन्ध हो तौ वह पुरुष निगड़ (हथकड़ी बेड़ी तौक आदि) से बंधता है, और प्रहारकी पीड़ाको भी प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अब नेत्रभङ्गयोग लिखते हैं—

शुक्राद्गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्रसे तथा लग्नसे नवम राशिके आरूढपदके विषे राहु स्थित हो और उसपर सूर्यकी दृष्टि हो तौ वह पुरुष नेत्रहीन होता है ॥ ४३ ॥

अब राजचिन्हयोग लिखते हैं—

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिन्हानि च । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक स्थानसे चतुर्थस्थानके विषे शुक्र तथा चन्द्रमा स्थित होय तौ वह पुरुष आतोद्य (बाजाविशेष) आदि किसी राजचिन्हका धारण करनेवाला होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रव्याख्यायां प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ।

अथ चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

यहा औरभी विशेष फल कहनेके निमित्त प्रथम उपपद पद कहते हैं—

उपपदं पदं पित्रनुचरात् । १ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेश लग्नको देखता हो या कारकाश्रित राशीश कारकको देखता हो तो वह पुरुष अत्यन्त बलवान होता है ॥ ४१ ॥

अब आपत्तियोग लिखतेहैं—

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्ये बन्धः कोणयोरिपुजाययोः कीटयुग्मयोर्द्वाररिष्फयोश्च । ४२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नसे द्वितीय स्थानके विषे, द्वादशस्थानके विषे, और पञ्चमस्थानके विषे, तथा नवमस्थानके विषे, और द्वादश स्थानके विषे तथा षष्ठ स्थानके विषे, और एकादशस्थानके विषे, तथा तृतीयस्थानके विषे और चतुर्थस्थानके विषे तथा दशमस्थानके विषे ग्रह समानसंख्याके हों तो वह पुरुष कारागार (जेलखाने) के विषे बन्धनको प्राप्त होता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंको शुभ ग्रह देखते हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका शुभ ग्रहोंमे सम्बन्ध हो तो वह पुरुष केवल राजकीय पुरुषोंकरके पकड़ा जाता है दुःख नहीं भोगना पड़ता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे पापग्रह स्थित हों, या पूर्वोक्त स्थानोंको पापग्रह देखते हों, या पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका पापग्रहोंमे सम्बन्ध हो तो वह पुरुष निगड़ (हथकड़ी बेड़ी तौक आदि) से बँधता है, और प्रहारकी पीड़ाको भी प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अब नेत्रभङ्गयोग लिखते हैं—

शुक्राद्गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्रसे तथा लग्नसे द्वितीय राशिके आरूढपदके विषे राहु स्थित हो और उसपर सूर्यकी दृष्टि हो तो वह पुरुष नेत्रहीन होता है ॥ ४३ ॥

अब राजचिन्हयोग लिखते हैं—

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिन्हानि च । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक स्थानसे चतुर्थस्थानके विषे शुक्र तथा चन्द्रमा स्थित होय तो वह पुरुष आतोद्य (बाजाविशेष) आदि किसी राजचिन्हका धारण करनेवाला होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रव्याख्यायां प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ।

अथ चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

यहाँ औरभी विशेष फल कहनेके निमित्त प्रथम उपपद पद कहते हैं—

उपपदं पदं पित्रनुचरात् । १

लग्नसे द्वादशराशिके आरूढपदको उपपद कहते हैं ॥ १ ॥

अब उपपदके आश्रयसे फल कहते हैं—

तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या दारनाशो वा । २ ।

अर्थ—जिस पुरुषके जन्मकालमें उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी पापग्रह हो और तहाँ पापग्रहका योग होय तौ संन्यास ग्रहण करनेवाला होता है, अथवा स्त्रीका नाश होजाता है ॥ २ ॥

अब यहाँ रविके विषयमें कुछ विशेष विधान लिखते हैं—

उपपदस्याप्यारूढत्वादेव नात्र रविपापः । ३ ।

अर्थ—उपपदकोभी एक प्रकारका आरूढ होनेके कारण यहाँ रवि पापग्रह नहीं है तिस कारण उपपदसे द्वितीय मेषादि पापराशियोंके विषे रविके होनेपर द्वितीय सूत्रमें कहाहुआ फल नहीं होता है ॥ ३ ॥

शुभ ग्रहकी दृष्टि होनेपर विशेषता कहते हैं—

शुभदृग्योगान्न । ४ ।

उपपदसे द्वितीय स्थानके विषे शुभ ग्रहकी दृष्टि अथवा योग होनेपरभी द्वितीय सूत्रमें कहाहुआ फल नहीं होता है ॥ ४ ॥

---

* यहां " पित्रनुचर"पदसे द्वादशराशिका बोध किस प्रकार होता-है ? उत्तर "पितृलग्नमनुचरं द्वितीयं यस्य" इस प्रकार व्युत्पत्ति करनेसे उक्त अर्थका लाभ होताहै, और पन्थने "पित्रनुचरात्" पदसे सप्तपाद्द्वारा सप्तमराशिका जो बोध करा है सो अयोग्य है क्योंकि यदि सूत्रकारको सप्तम स्थानकी अपेक्षा होती तौ लाघवार्थ "उपपदम् पदम् लग्नात्" ऐसा सूत्र रचते ॥

अब नीचग्रहके विषयमें फल कहते हैं—

नीचे दारानाशः । ५ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय राशिके विषे नीच ग्रहका नवांशक अथवा नीच ग्रहकी स्थिति होय तो स्त्रीका मरण होता है ॥ ५ ॥

अब बहुदारयोग कहते हैं—

उच्चे बहुदाराः । ६ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें उच्च राशिके विषे स्थित ग्रहका नवांशक हो अथवा उच्च ग्रहकी स्थिति होय तो उस पुरुषके बहुत स्त्री होती हैं ॥ ६ ॥

युग्मे च । ७ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय राशि मिथुन होय तो भी बहुत स्त्री होती हैं ॥ ७ ॥

अब दारनाश योगमें विलम्बकर योग कहते हैं—

तत्र स्वामियुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्तरायुषि निर्दारः । ८ ।

अर्थ—जिसकी कुडण्लीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थान अपने स्वामीकरके युक्त हो, अथवा उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी अपनी राशिमें स्थित होय तो, पिछली अवस्था (वृद्धावस्थामें) पुरुष स्त्रीहीन हो जाता है ॥ ८ ॥

अब अन्ययोग कहते हैं—

उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलाद्दारलाभः । ९ ।

अर्थ—यदि उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी उच्च शिके विषे स्थित होय तौ उत्तम कुलसे स्त्रीकी प्राप्ति होती

तहाँ विपर्य्यय कहते हैं—

नीचे विपर्य्ययः । १० ।

अर्थ—यदि उपपदसे द्वितीयस्थानका स्वामी नीच राशिके विषे स्थित होय तौ पूर्वोक्तसे विपरीत फल होता है. अर्थात् नीचकुलसे स्त्रीकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

शुभसम्बन्धात्सुन्दरी । ११ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय स्थानके विषे शुभ वर्गकी दृष्टि अथवा योग होय तौ स्त्री सुन्दरी होतीहै ॥ ११ ॥

तहाँ राहु और शनिका फल कहते हैं—

राहुशनिभ्यामपवादात्यागो नाशो वा । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें राहु और शनिकी स्थिति[illegible] तौ लोकापवादसे स्त्रीका त्याग अथवा नाश होता है ॥ १२ ॥

तहाँ शुक्र और केतुका फल कहते हैं—

शुक्रकेतुभ्यां रक्तप्रदरः । १३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपद[illegible] स्थानमें शुक्र और केतुका योग होय तौ उक्त

अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् । १४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुध और केतुका योग हो उसकी स्त्री अस्थिस्राव रोगवाली होती है ॥ १४ ॥

तहाँ शनि, रवि, और राहु इन तीनोंका फल कहते हैं—

शनिरविराहुभिरस्थिज्वरः । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें शनि सूर्य और राहु इन तीनोंका योग होय उसकी स्त्रीके अस्थिगत ज्वर होताहै ॥ १५ ॥

तहाँ बुध और केतुकी स्थितिका अन्य फल कहते हैं—

बुधकेतुभ्यां स्थौल्यम् । १६ ।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीमें उपपदसे द्वितीय स्थानके विषे बुध और केतुका योग होय तौ उस पुरुषकी स्री स्थल शरीरवाली होतीहै ॥ १६ ॥

तहाँ बुध और भौमका विशेष योग कहते हैं—

बुधक्षेत्रे मन्दाराभ्यां नासिकारोगः । १७ । कुजक्षेत्रे च । १८ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी बुध अथवा मंगल होय और तहाँ भौम तथा शनिका योग होय तौ नासिकाके रोग वाली स्त्री होती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

तहाँ गुरु तथा शनिके योगका फल कहते हैं—

गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो नरहका च। १९।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीके विषे बुध अथवा भौमका उपपदसे द्वितीय स्थान होय और उसमें गुरु तथा शनिकी स्थिती होय तौ उस पुरुषकी स्त्री कर्णरोगवाली और नाड़ीके निःसरण रोगवाली होती है ॥ १९ ॥

तहाँ गुरु और राहुका फल कहते हैं—

गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः । २० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी बुध अथवा मंगल हो और तहाँ बृहस्पति और राहुकी स्थिति होय तौ उसकी स्त्री दन्तरोगवाली होती है ॥ २० ॥

शनिराहुभ्यां कन्यातुलयोः पङ्गुर्वातरोगो वा । २१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्मकुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थान कन्या अथवा तुला राशि हो और उसके विषे शनि और राहु यह दोनो ग्रह स्थित हों तौ उसकी स्त्री पङ्गु अथवा वातरोगवाली होती है ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त योगोंका निषेध कहते हैं—

शुभदृग्योगान्न । २२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभग्रहकी दृष्टि अथवा स्थिति होय तौ पूर्व कहेहुए दोष नहीं होते हैं ॥ २२ ॥

अब भतमभाव आदिसे द्वितीय स्थानका फल कहते हैं—

सप्तमांश ग्रहेभ्यश्चैवम्। २३।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्म कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोमे और इन दोनोके स्वामियोंसे द्वितीय स्थानमेंभी उपपदसे द्वितीय स्थानमें कहेहुए फलही जानने ॥ २३ ॥

सोई वृद्धकारिकामें कहा है—.

सप्तमेशा द्वितीयस्थेऽप्येवं फलमुदाहृतम् ॥

अर्थ—सप्तमेशमे द्वितीयस्थके विषेभी इसी प्रकार फल कहना ॥ २३ ॥

बुधशनिशुक्रे चानपत्यः। २४।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तमभावस्थ नवांश इन दोनोसे और दोनोके स्वामियोंसे द्वितीयस्थानमें बुध शनि और शुक्र यह तीनो स्थित हों तो वह पुरुष सन्तान हीन होताहै ॥ २४ ॥

अब सप्तम भावादिसे पञ्चम स्थानका फल कहते हैं—

पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्बहुपुत्रः। २५।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोंमे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चमस्थानमें सूर्य और बृहस्पति तथा राहु होयं तो वह पुरुष बहुतसे पुत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥

अब एक पुत्रयोग लिखते हैं—

चन्द्रेण चैकपुत्रः। २६।

अर्थ—और जिसकी कुण्डलीमें उपपदसे जो सप्तम

भावादि तिनसे पञ्चमस्थानमें केवल चन्द्रमा होय तो उस पुरुषके एकही पुत्र होता है ॥ २६ ॥

अब उक्तस्थानसे विलम्बात्पुत्रयोग कहते हैं—

मिश्रे विलम्बात्पुत्रः । २७ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदसे सप्तम भावादिसे पञ्चमस्थानमें पुत्रदायक और पुत्रनाशक सम्पूर्ण ग्रह मिलकर स्थित हों उसके विलम्बसे पुत्रोत्पत्ति होतीहै ॥२७॥

अब दत्तकपुत्रयोग लिखते हैं—

कुजशनिभ्यां दत्तपुत्रः । २८ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोंसे तथा इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चमस्थानमें भौम और शनैश्चर स्थित हों तो वह पुरुष दत्तकपुत्र लेनेवाला होता है ॥ २८ ॥

अब अन्यरीतिसे बहुपुत्रयोग लिखते हैं—

ओजे बहुबहुपुत्रः । २९ ।

अर्थ—जिसके उपपदसे सप्तम भावादिसे पञ्चमस्थानमें विषम राशि हो वह पुरुष अनेक पुत्रवाला होता है ॥ २९ ॥

अब अल्प सन्ततियोग लिखते हैं—

युग्मेऽल्पप्रजः । ३० ।

अर्थ—और यदि पूर्वोक्त स्थानमें सम राशि होय तो वह पुरुष थोड़ी सन्तानवाला होता है ॥ ३० ॥

अब पूर्वोक्त स्थानमें विशेष रीति लिखते हैं—

गृहक्रमात्कुक्षितटीशपञ्चमांशग्रहेभ्यश्चैवम् । ३१ ।

अर्थ—गृहक्रमसे अर्थात् जन्मलग्नसे जिस प्रकार द्वादश भावोंका विचार होता है, तिसी प्रकार उपपद और उपपदका स्वामी इन दोनोंसे, तथा पञ्चम भाव और पञ्चम भावस्थ नवांश और इन दोनोंके स्वामी ग्रहोंसेभी पूर्वोक्त फलका विचार करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अब भ्रातृनाशयोग लिखते हैं—

भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः । ३२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके उपपद और उपपदका स्वामी इन दोनोंसे तृतीय अथवा एकादशस्थानमें यदि शनैश्चर और राहु स्थित हों तो उस पुरुषके भ्राताका मरण होवैहै ३२

अब मातृगर्भनाशयोग लिखते हैं—

शुक्रेण व्यवहितगर्भनाशः । ३३ ।

अर्थ—यदि उपपद और उपपदके स्वामीसे तृतीय अथवा एकादश स्थानमें शुक्र स्थितहो तो माताके व्यवहित अर्थात् पहिले और पिछले गर्भोंका नाश होता है ३३

+ यहां ऐसी शंका होती है कि सूत्रमे तो उपपद और उपपदेशका नामही नहीं फिर अर्थमे कहांसे आए ? तहां कहते हैं कि गृह क्रमादि इत्यादि ऊपरके सूत्रमेंसे ' कुक्षितदीश ' पदका ग्रहण करा है. यदि कहो कि ' कुक्षितदीश ' पद तो समासमें पड़ा है और समासके एक अंशकी अनुवृत्ति हो नहीं सक्ती, तहां कहते हैं कि अन्य पदोंसे भ्रातृविचार हो नहीं सक्ता इसकारण यहां समासके एक अंशकीभी अनुवृत्ति हो जायगी ॥ × यदि तृतीय स्थानमें शनि और राहु हों तो कनिष्ठ भ्राताका और एकादश स्थानमें हो तो ज्येष्ठ भ्राताका नाश होता है ॥ × अर्थात् यदि तृतीयस्थानमें शुक्र हो तो पहले और एकादशस्थानमें हो तो पिछले गर्भोंका नाश होताहै॥

अब अन्य भावसे मातृगर्भनाशयोग लिखते हैं—

पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि । ३४ ।

अर्थ—लग्नके विषे अथवा लग्नके अष्टम स्थानके विषे शुक्रकी दृष्टि होय तवभी माताके व्यवहित गर्भोंका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अब बहुभ्रातृयोग लिखते हैं—

कुजगुरुचन्द्रबुधैर्बहुभ्रातरः । ३५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपद और उपपदके स्वामीसे तृतीय अथवा एकादश स्थानमें भौम, बृहस्पति चन्द्रमा और बुध यह चारों ग्रह स्थित हों तो उसके बहुतें भ्राता होते हैं ॥ ३५ ॥

शन्याराभ्यां दृष्टे यथा स्वं भ्रातृनाशः ।३६।

अर्थ—जिस पुरुषके उपपद और उपपदसे तृतीय और एकादश स्थानमें क्रमसे शनि और भौमकी दृष्टि होय तो यथाक्रम भ्रातृनाश होता है, अर्थात् तृतीय स्थानपर शनि और भौमकी दृष्टि होय तो लघु भ्राता नाश और एकादशस्थानपर हो तो ज्येष्ठ भ्राताका नाश तथा दोनो स्थानोंपर उक्तग्रहोंकी दृष्टि हो तो कनिष्ठ और ज्येष्ठ दोनों भ्राताओंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

शनिना स्वमात्रशेषश्च । ३७ ।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीमें उपपद और उपपदके स्वा-

× यदि तृतीय स्थानमें भौमादि ग्रह हों तो कनिष्ठ भ्राता और एकादशस्थानमें भौमादि ग्रह हों तो ज्येष्ठ भ्राता अधिक होते हैं ॥

मीसे तृतीय और एकादश स्थानमें शनिकी स्थिति होय तौ सर्व नाश हो जाता है, केवल अपने आपही शेष रह-जाता है ॥ ३७ ॥

अब भगिनीबाहुल्ययोग लिखते हैं—

केतौ भगिनीबाहुल्यम् । ३८ ।

अर्थ—यदि पूर्वोक्तस्थानमें केतु स्थित हो तौ उसके भगिनी बहुत होती हैं ॥ ३८ ॥

लाभेशाद्भाग्यभे राहौ दंष्ट्रा वा । ३९ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्मकुण्डलीके विषे उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय राशिके विषे राहु स्थित होय तौ उस पुरुषकी दाढ़ बड़ी होती है॥सोई वृद्धकारिकाओंमें भी कहाहै—

"सप्तमेशात्तृतीयस्थे राहौ मूकः खले स्थिते ।
अदन्तोऽधिकदन्तो वा दंष्ट्रायुक्तोऽथवा भवेत् १
पवनव्याधिमान् केतौ यद्वा स्यादस्फुटोक्तिमान्
तत्र नानाग्रहैर्योगे मिश्रं फलमुदाहृतम्" । २ ।

अर्थ—यह है कि जिसके उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय राशिमें राहु स्थित हो वह पुरुष गूंगा अथवा बड़ी ठोढ़ी-वाला होताहै. और यदि पूर्वोक्त स्थानमें केतु स्थित होय तौ वातरोगवाला अथवा स्पष्ट न बोलनेवाला अर्थात् तोतला होता है, और यदि मिश्रित ग्रह स्थित हो तौ मिश्रित फल होता है ॥ ३९ ॥

केतौ स्तब्धवाक् । ४० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय स्थानमें केतु होय वह स्तब्धवाक् (तोतला) होताहै ॥ ४० ॥

मन्दे कुरूपः । ४१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय स्थानमें शनैश्चर स्थित हो वह कुरूप होता है ॥४१॥

स्वांशवशाद्गौरनीलपीतादिवर्णः । ४२ ।

अर्थ—जिस नवांशके विषे आत्मकारक स्थित हो उस नवांशका जो वर्ण स्वभावसेही अन्य जातकग्रन्थोंके विषे वर्णन करा है, वही गौर नील और पीत आदि वर्ण कुण्डलीवालेका होताहै, इस प्रकार पितृकारकादिके नवांशसे उनकाभी वर्ण जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अमात्यानुचराद्देवताभक्तिः । ४३ ।

अर्थ—अमात्यकारक ग्रहसे जो ग्रह अंश अथवा कलाओंकरके न्यून हो, उससे देवताकी भक्तिका विचार करना चाहिये, अर्थात् अमात्यकारकसे न्यून ग्रह देवताकी भक्ति करानेवाला होताहै, वह यदि पापग्रह होय तो क्रूर देवतामें भक्ति होतीहै, और शुभ होय तो देवतामें भक्ति होतीहै, और उच्चका या अपनी राशिका होय तो दृढ भक्ति होती है, तथा नीचका होय तो अस्थिर (चलायमान) भक्ति होवीहै ॥ ४३ ॥

अब जारजयोग लिखते हैं—

स्वांशे केवलपापसम्बन्धे परजातः । ४४ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवांशके विषे शुभ ग्रहोंको छोड़ केवल पापग्रहोंका ही सम्बन्ध होय तौ वह पुरुष जारज होताहै ॥ ४४ ॥

पूर्वोक्त सूत्रके विपर्यमें बाधक लिखते हैं—

नात्र पापात्। ४५।

अर्थ—और यदि आत्मकारक पापग्रह हो तौ यह फल नहीं होताहै, अर्थात् आत्मकारकसे अन्य पापग्रहका सम्बन्ध होय तबहीं पूर्वोक्त फल होता है, आत्मकारकके पापग्रह होनेमे नहीं, और किन्हीका ऐसा मत है कि अष्टम स्थानमें पापग्रह हो तौभी उक्त फल नहीं होताहै ॥ ४५ ॥

शनिराहुभ्यां प्रसिद्धिः। ४६।

अर्थ—पूर्वोक्त जारज योगमें शनैश्चर और राहु दृष्टि-योग षड्वर्ग करके योगकारक हों तौ जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि होजाती है ॥ ४६ ॥

गोपनमन्येभ्यः। ४७।

अर्थ—शनैश्चर और राहुको छोड़कर अन्य पापग्रह योगकारक हों तौ जारज (व्यभिचार करके अन्य पुरुषके वीर्य्यमें उत्पन्न हुए) पुरुषका जारसे उत्पन्न होना गुप्त रहताहै ॥ ४७ ॥

शुभवर्गेऽपवादमात्रम्। ४८।

अर्थ—पापग्रह योगघटक हों और कारकांशोंमें शुभग्रहोंके षड्वर्गका सम्बन्ध होय तौ जारज योगका कलङ्क मात्र होय, वास्तवमें जारज न होय ॥ ४८ ॥

* यहां सम्बन्ध दृष्टियोग षड्वर्गमें जानना ॥

अब कुलमुख्ययोग लिखते हैं—

द्विग्रहे कुलमुख्यः । ४९ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकके नवमांशमें दो ग्रहोंकी स्थिति होय, वह अपने कुलमें मुख्य होताहै ॥ ४९ ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

यहाँ प्रथम आयुर्दा निर्णय लिखते हैं—

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् । १ ।

अर्थ—लग्नका स्वामी और अष्टम स्थानका स्वामी इन दोनोंसे आयुका विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

यहाँ प्रथम दीर्घायुयोग लिखते हैं—

प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् । २ ।

अर्थ—यदि लग्नेश और अष्टमेश यह दोनों प्रथम कहिये चर राशि राशिके विषे स्थित हों, अथवा उत्तर कहिये स्थिर राशि द्विस्वभाव राशिके विषे स्थित हों तो दीर्घायु योग होताहै। अभिप्राय यह है कि जहाँ कहींभी चर राशिके विषे लग्नेश अष्टमेश दोनों स्थित हों तहाँ दीर्घायु योग होताहै, और स्थिरमें लग्नेश तथा द्विस्वभाव राशिमें अष्टमेश हो वे अथवा द्विस्वभाव राशिमें लग्नेश हो और स्थिर राशिमें अष्टमेश हो तब भी दीर्घायुयोग होता है, और लग्नेश अ-

ष्टमेश दोनों स्थिर राशिमेंही अथवा द्विस्वभाव राशिमें ही स्थित हों तब भी दीर्घायुयोग होता है ॥ २ ॥

अब मध्यायुयोग लिखते हैं—

प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् । ३ ।

अर्थ—यदि चरराशिमें लग्नेश होय, और स्थिर राशिमें अष्टमेश होय, अथवा स्थिर राशिमें लग्नेश होय और चर राशिमें अष्टमेश होय, वा द्विस्वभाव राशिके विषे ही दोनों हों तो मध्यमायु योग होताहै ॥ ३ ॥

अब अल्पायुयोग लिखते हैं—

मध्यमयोराद्यन्तयोर्वा हीनम् । ४ ।

अर्थ—स्थिर राशिके विषे लग्नेश और अष्टमेश दोनों स्थित हों, अथवा चर राशिमें लग्नेश होय और द्विस्वभाव राशिमे अष्टमेश होय, अथवा द्विस्वभाव राशिमें लग्नेश हो और चर राशिके विषे अष्टमेश हो तो अल्पायुयोग होता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार लग्नेश और अष्टमेशकी चरादि राशिके विषे स्थितिसे दीर्घायु, मध्यमायु और अल्पायु योग कहे, तिसी कार अब लग्न और चन्द्रमासे दीर्घायु आदि योग कहते हैं।

एवं मन्दचन्द्राभ्याम् । ५ । कि यदि

अर्थ—उपरोक्तरीतिके अनुसारही [illegible] तो, लग्न और सेभी दीर्घायु, मध्यमायु और अल्पायु [illegible]हण करना चाहि[illegible]

अब तृतीय रीतिमे पर्वोक्त योग [illegible] कारिकामें कहे हैं

में लिखै और मध्यके तीन कोष्ठ स्थिरराशियोंके हैं उनमे क्रमसे द्विस्वभाव, चर स्थिर इन तीनोंके चिन्ह (३- १- २) लिखै, और नीचेके तीन कोष्ठ द्विस्वभाव राशिके हैं, उनमें क्रमसे स्थिर, द्विस्वभाव चर इन तीनोंके चिन्ह (२- ३- १) लिखै, और फिर तीनोंमें क्रमसे दीर्घ, मध्य, अल्प लिखै तब प्रस्तार स्पष्ट होताहै ॥ ६ ॥

सम्वादात्प्रामाण्यम् । ७ ।

अर्थ—यदि उपरोक्त लग्नेश और अष्टमेशसे लग्न और चन्द्रमासे, तथा जन्मलग्न और होरालग्नसे, इन तीनों रीतियोंसे एकही प्रकारका आयुर्दाय निश्चय होता होय, तब तौ कुछ सन्देह नहीं, परन्तु दो रीतियोंसे एक प्रकारका आता होय और तीसरी रीतिसे भिन्न प्रकारका आता होय तौ दो रीतिके अनुसार आनेवाला आयुर्बल ग्रहणीय होताहै ॥ ७ ॥

विसम्वादे पितृकालतः । ८ ।

अर्थ—यदि तीनों रीतियोंमे भिन्न भिन्न तीन प्रकारके आयुर्बल आवें तौ जन्मलग्न और होरालग्नकी रीतिसे आएहुए आयुर्बलको ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् । ९ ।

अर्थ—तहाँ भी इतना ध्यान रखना चाहिये कि यदि लग्न अथवा सप्तम स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय तौ, लग्न और चन्द्रमाकी रीतिसे लाएहुए आयुर्बलका ग्रहण करना चाहि ॥ ९ ॥ अल्पायु आदिके स्वरूप वृद्धकारिकामें कहे हैं

जायँगे, तिस त्रैराशिककी गणित क्रिया करनेमें उपरोक्त अमुक अंशसंख्याको बत्तीससे गुणा करके तीसका भाग देय तब जो लब्धि होय उसमें लग्नेश और अष्टमेशको अलग स्पष्ट करके लाएहुए वर्ष मासादि युक्त करके आधा कर ले. तब स्पष्ट होताहै, वह यदि दीर्घायुका निकाला होय तौ चौंसठमें युक्त कर देय, और मध्यमायुका निकाला होय तौ बत्तीसमें युक्त कर देय, और यदि अल्पायुका निकाला होय तब तौ प्रथम खण्डके अभावसे यह ही जन्मकालसे लेकर वर्तमान आयु होता है, इसी प्रकार लग्नचन्द्रमा और जन्मलग्न, होरालग्नसे आएहुए आयुमें भी अन्तके खण्डको स्पष्ट करना चाहिये ॥ ९ ॥

अब पूर्वोक्त दीर्घायु आदि योगोंमें कुछ विशेषता लिखें हैं—

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः । १० ।

अर्थ—यदि शनैश्चर योगकर्त्ता होयँ तौ एक कक्ष्याकी हानि होती है, अर्थात् शनैश्चरके योगकारक होनेपर दीर्घायु होय तौ मध्यमायु होती है, और मध्यमायु होय तौ अल्पायु होती है, और अल्पायु होय तौ कुछ आयु नहीं होती है १०

इस विषयमें मतान्तर लिखते हैं—

विपरीतमित्यन्ये । ११ ।

अर्थ—कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि ऊपरका कथन विपरीत है, अर्थात् शनिके योगकारक होनेपर ह्रास कदापि नहीं होता है, किन्तु दीर्घायु आदि जैसा होता है वैसाही रहता है ॥ ११ ॥

अपना मत लिखते हैं—

"द्वात्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत् ।
चतुःषष्ट्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्"॥१॥

इसका अर्थ यह है कि बत्तीस ३२ वर्षकी अल्पायु, और चौसठ ६४ वर्षकी मध्यमायु, तथा उससे आगे दीर्घायु कही जाती है ॥ १ ॥

उपरोक्त तीन प्रकारकी आयु आनेपर स्पष्ट करनेकी रीति भी वृद्धकारिकाओंके विषे कही है—

"पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपातो मध्यतो भवेत् ।
राशिद्वयस्य योगार्द्धं वर्षाणां स्पष्टमुच्यते ॥ १ ॥
एवं विकानां संचिन्त्य त्रयाणां सत्रवर्त्मनि" ॥

अर्थ—यदि पूर्वोक्त रीतियोंसे जो आयुनिर्णय किया जाय, उसमें यदि दीर्घायु योग आवे तो मध्यमायुके भोगपर्यन्त तो कुछ सन्देहही नहीं, मध्यमायुसे आगे दीर्घायुके बत्तीस वर्षके खण्डमेंसे कितनी आयु ग्रहण करनी चाहिये इस सन्देहको निवृत्त करनेके अर्थ यह श्लोक है, जहाँ लग्नेश और अष्टमेश दोनों जिस राशिमें हों, उस राशिके यदि आरम्भमें हों तो वह दीर्घायुका खण्ड पूर्ण ही होताहै, और यदि जिस राशिमें हों उसके अन्तमें हों तो उस खण्डका नाश होता है, यदि उस राशिके मध्यमें हों तो त्रैराशिकके द्वारा दीर्घायुखण्डका एक देश ग्रहण करना चाहिये, वह त्रैराशिक इस प्रकार करै कि यदि तीस अंशों करके ३२ वर्ष भोगे जाते हैं तो अमुक अंश संख्या (जिस राशिपर लग्नेश और अष्टमेश हों उस राशिके जितने अंश व्यतीत हुए हों उस अंकसंख्या) करके कितने वर्ष भोगे

पुरुषकी मृत्यु होती है; । तथा द्वारराशि और द्वारराशिका स्वामी मलिन होय अर्थात् पापग्रहकी दृष्टि या योगवाला होय तौ द्वार और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामे मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

शुभदृग्योगान्न । १६ ।

अर्थ—और यदि द्वारबाह्य तथा द्वारेश शुभग्रहकी दृष्टियोग करके युक्त हों तौ द्वारबाह्य और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामें मृत्यु नहीं होती है ॥ १६ ॥

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः । १७ ।

अर्थ—यदि शुभग्रहकी दृष्टि योगादि नहोकरभी जन्मलग्नसे अष्टमेश उच्चका होय तौ मृत्युयोग होनेपर भी नौ वर्ष आयु बढ़ जाती है ॥ १७ ॥

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां पितृदिनेशत्रिकोणे वा । १८ ।

अर्थ—तिस नवांशकी वृद्धिमें लग्नारूढ़का जो स्वामी उसकी आश्रयीभूत राशि अर्थात् जिस राशिमें लग्नारूढ़ पदका स्वामी स्थित हो उस राशिकी दशाके अन्तमें मरण होता है, अथवा जन्म लग्नारूढ़ पदके नवांशकी दशामें मरण होता है, वा लग्नेश और अष्टमेशसे जो त्रिकोण अर्थात् लग्न पंचम और नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें मरण होता है ॥ १८ ॥

अब अन्य रीतिसे आयुर्बल निर्णय लिखते हैं—

सूत्राभ्यां नस्वर्क्षतुङ्गे सौरेः । १२ ।
केवलपापदृग्योगिनि च । १३ ।

अर्थ—शनि अपनी राशिका हो अथवा अपने उच्चका होय, तथा शुभग्रहकी-दृष्टि और शुभग्रहके योग रहित केवल पापग्रहकी दृष्टि होय तब तौ कक्ष्या ह्रास नहीं होता है, अन्यथा तौ होताही है ॥ १२ ॥ १३ ॥

पितृलाभगे गुरौ केवलशुभदृग्योगिनि च कक्ष्यावृद्धिः । १४ ।

अर्थ—यदि लग्न वा सप्तमस्थानमें आयुर्बल योगकारक बृहस्पति होयँ और पापग्रहकी दृष्टि अथवा योग न हो, केवल शुभग्रह मात्रकी ही दृष्टि अथवा योग होय तौ कक्ष्याकी वृद्धि होती है, अर्थात् जिसकी अल्पायु हो उसकी मध्यमायु हो जाती है, और जिसकी मध्यमायु हो उसकी दीर्घायु हो जाती है, और जिसकी दीर्घायु हो उसको ९६ वर्षसे अधिक अवस्था होती है ॥ १४ ॥

मलिने द्वारबाह्येनवांशे निधनं द्वारद्वारेशयोश्च मालिन्ये । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके द्वार और बाह्य मलिन हों अर्थात् स्वयं पापग्रह हों या पापग्रहकी दृष्टि और योग करके सहित हों तौ द्वार और बाह्य राशिकी नवांशदशाके विषे

* दशा श्रयो द्वार ततस्तावत्तिय बाह्यम्" इत्यादि आगे द्वितीयाध्यायके चतुर्थ पादमें द्वितीय और तृतीय सूत्रके विषे, द्वार और बाह्यका स्वरूप लिखेंगे ॥

पुरुषकी मृत्यु होती है; । तथा द्वारराशि और द्वारराशिका स्वामी मलिन होय अर्थात् पापग्रहकी दृष्टि या योगवाला होय तौ द्वार और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामे मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

शुभदृग्योगान्न । १६ । २-१-१६

अर्थ—और यदि द्वारवाह्य तथा द्वारेश शुभग्रहकी दृष्टियोग करके युक्त हों तौ द्वारवाह्य और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामें मृत्यु नहीं होती है ॥ १६ ॥

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः । १७ । २-१-१७

अर्थ—यदि शुभग्रहकी दृष्टि योगादि नहोकरभी जन्मलग्नसे अष्टमेश उच्चका होय तौ मृत्युयोग होनेपर भी नौ वर्ष आयु बढ़ जाती है ॥ १७ ॥

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां पितृदिनेशत्रिकोणे वा । १८ ।

अर्थ—तिस नवांशकी वृद्धिमें लग्नारूढ़का जो स्वामी उसकी आश्रयीभूत राशि अर्थात् जिस राशिमें लग्नारूढ़ पदका स्वामी स्थित हो उस राशिकी दशाके अन्तमें मरण होता है, अथवा जन्म लग्नारूढ़ पदके नवांशकी दशामें मरण होता है, वा लग्नेश और अष्टमेशसे जो त्रिकोण अर्थात् लग्न पंचम और नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें मरण होता है ॥ १८ ॥

अब अन्य रीतिसे आयुर्बल निर्णय लिखते हैं—

पितृलाभरोगेशे प्राणिनि कण्टकादिस्थे स्वतश्चैवं त्रिधा। १९।

अर्थ—लग्नसे और सप्तम स्थानसे जो अष्टम स्थानके स्वामी हों, उन दोनोंमें जो बलवान्‌हो वह लग्नादि केन्द्रमें होयँ तौ दीर्घायु योग होता है, और पणफरस्थानमें होयँ तौ मध्यमायु योग होता है, और आपोक्लिममे स्थित होयँ तौ अल्पायुयोग होता है, इसी प्रकार आत्मकारक और सप्तम स्थानसे अष्टम स्थानके जो स्वामीहों उन दोनोंमें जो बली हो वह लग्नादि केन्द्रमें होय तौ दीर्घायु होती है, पणफरमें होयँ तौ मध्यमायु होती है, और आपोक्लिममें होयँ तौ अल्पायु होती है ॥ १९ ॥

योगात्सप्तमेस्वस्मिन्विपरीतम्। २०।

अर्थ—योग जो जन्मलग्नसे सप्तमस्थान तिससे सप्तम और नवमस्थानमें यदि आत्मकारक होय तौ "पितृलाभेत्यादि" ऊपरके सूत्रमें कहे हुए आयुर्बल योग नहीं होते हैं; । किन्तु विपरीत हो जाते हैं, अर्थात् दीर्घायु होय तौ मध्यमायु, और मध्यमायु होय तो अल्पायु, तथा अल्पायु होय तौ हीनायु होजाता है; । और कोई आचार्य्य अन्य प्रकारका वैपरीत्य कहते हैं कि दीर्घायु होयतौ अल्पायु होजाता है, और अल्पायु होयतौ दीर्घायु हो जाता है, और मध्यमायु हो तो मध्यमायुही रहजाता है, । आयुर्दायके विषयमें वृद्धोंने कुछ विशेष रीति कही है—

एको ऽष्टमेशः स्वोच्चस्थः पर्यायार्द्धं प्रयच्छति ।
नीचस्थो नाशयेत्पर्य्यायार्द्धमायुषि निश्चिते ॥१॥
नीचरन्ध्रेश संयुक्ता पर्य्यायार्द्धं पृथक् पृथक् ।
ग्रहा विनाशयन्त्येवं निर्णीते परमायुषि ॥ २ ॥
उच्चरन्ध्रेशसंयुक्तग्रहैः प्रत्येकमुन्नयेत् ।
एकैकमर्द्धपर्य्यायं परमायुषि निश्चिते" ॥ ३ ॥

अर्थ—ऊपरजो कह आए हैं कि "आयुः पितृदिनेशाभ्याम्" लग्नेश और अष्टमेश से आयुका निर्णय करे, तहाँ अष्टमेश यदि उच्चका होय तौ "नाथान्ताः समाः प्रायेण" इस प्रथमाध्यायके प्रथम पादके अठ्ठाईसवें सूत्रानुसार अपनी दशाके आधे वर्षप्रमाण आयु अधिक देता है, और अष्टमेश नीचस्थ होय तौ अपनी दशाके आधे वर्ष प्रमाण आयुको नाश कर देता है; । इसी प्रकार उच्चस्थ और नीचस्थ अष्टमेश ग्रहके साथ स्थित अन्य ग्रहभी उच्चस्थ अष्टमेशयुक्त हों तौ उक्त सूत्रके अनुसार अपनी दशाके आधे वर्ष प्रमाण आयुकी वृद्धि करते हैं. और नीचस्थ अष्टमेश युक्त हों तौ उक्त सूत्रके अनुसार अपनी दशाके आधे वर्ष प्रमाण आयु हीन कर देते हैं, इसी प्रकार लग्नेश और लग्नेश संपृक्त ग्रहभी उच्च नीच आदि गुणसे आयुकी वृद्धि और ह्रास करते हैं ॥ २० ॥

इस प्रकरणमें ग्रहोंका षठ विंशमिकारका ग्रहणकराजाता है सो लिखते हैं—

राशितः प्राणः । २१ ।

अर्थ—यहाँ राशिसे बलग्रहण करना चाहिये, अर्थात् अंशोंकी अधिकतासे बल इस प्रकरणमें नहीं ग्रहण करै २१

अब अन्यरीतिसे मध्यमायुयोग कहते हैं—

रोगेशयोः स्वत ऐक्ये योगे वा मध्यम् । २२ ।

अर्थ—लग्नसे और सप्तमस्थानसे अष्टमेश आत्मकारकही हो, अथवा आत्मकारक करके संयुक्त होय तौ "पितृलाभेत्यादि" सूत्रसे यदि दीर्घायुभी आईहो तबभी मध्यमायुही होती है ॥ अन्य जातकशास्त्रोंमें लग्नका और इस ग्रन्थमें कारक का प्राधान्य होनेके कारणं अष्टमेशके योगसे आयुका ह्रासही होता है ॥ २२ ॥

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे कोणपाप योगे वा कक्ष्याह्रासः । २३ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम यह दोनो यदि पापग्रहोंके मध्यमें हों तौ कक्ष्याका ह्रास होता है, (लग्न कुण्डलीके विषे द्वितीय और द्वादशस्थानमें तथा षष्ठ और नवमस्थानमें पापग्रह हों तौ यह योग होता है), और लग्न, सप्तमके विषे, तथा त्रिकोण इन सब (लग्न-पञ्चम-और नवम स्थान) के विषे पापग्रह हों तौ भी कक्ष्या ह्रास होता है २३

स्वस्मिन्नप्येवम् । २४ ।

अर्थ—इसीप्रकार आत्मकारकराशिके और आत्मकारकसे सप्तमराशिके पापग्रहोंके मध्यमें होनेपर और आत्मकारक, तथा आत्मकारकसे सप्तमस्थान त्रिकोण इन

सब स्थानोंमे पापग्रहों के स्थित होनेंपरभी कक्ष्या ह्रास होता है ॥ २४ ॥

तस्मिन्पापे नीचेऽतुङ्गेऽशुभसंयुक्ते च। २५।

अर्थ—वह आत्मकारक स्वयं पापग्रह हो या नीच हो तौ भी कक्ष्याह्रास होता है, और वह आत्मकारक पापग्रह होकर तथा पापग्रहसंयुक्त होकर उच्चस्थानसे अन्य-स्थानमें होय तौ भी कक्ष्यान्हास होताहै ॥ २५ ॥

अन्यदन्यथा। २६।

अर्थ—अन्यथा, अर्थात् लग्न और सप्तम तथा आत्मकारक और आत्मकारकसे सप्तमस्थान शुभग्रहोंके मध्यगतहो, और आत्मकारकसे त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह हों, और आत्मकारक स्वयं शुभग्रह हो नीच न हो शुभग्रह होकर और शुभग्रह संयुक्त होकर उच्चका पड़ा हो तौ कक्ष्यावृद्धि होती है ॥ २६ ॥

गुरौ च। २७।

अर्थ—इसी प्रकार गुरुसे द्वितीय द्वादश और षष्ठ तथा अष्टमस्थानमें पापग्रह हों तौ कक्ष्याका न्हास होता है और गुरु नीचस्थ हों उच्चस्थ न हों अशुभ ग्रहकरके युक्त हों तौ भी कक्ष्यान्हास होता है, और अन्यथा गुरुसे द्वितीय, द्वादश, षष्ठ, और अष्टमस्थानके विषे शुभग्रह हों, और गुरुसे त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह हों तथा गुरु नीचस्थ न हों किन्तु शुभग्रहसंयुक्त होकर उच्चका होय तौ कक्ष्यावृद्धि होती है ॥ २७ ॥

पूर्णेन्दु-शुक्रयोरेकराशिवृद्धिः। २८।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें शुभग्रहका योग होनेपर पूर्णेन्दु और शुक्रकाभी योग होय तौ कक्ष्याकी वृद्धि न होकर एकराशिकीही वृद्धि होती है ॥ २८ ॥

शनौ विपरीतम् । २९ ।

अर्थ—पापग्रहोंके योगसे जो कक्ष्यान्हास कहा है तहां यदि पूर्वोक्त स्थानोंमें शनिका योग होय तौ कक्ष्याका न्हास न होकर एक राशिकाही न्हास होता है ॥ २९ ॥

अथ मरणकालके जाननेका उपाय लिखते हैं—

स्थिरदशायां यथाखण्डं निधनम् । ३० ।

अर्थ—पूर्वोक्त दीर्घायु, मध्यमायु, अल्पायु, इन तीनों मेंसे जिस पुरुषका जो आयु हो उसके तीनखण्ड करै उन तीनों मेंसे जो भाग मरणका हो वह भाग जब मारक राशिकी स्थिर दशा (दशाका प्रमाण "शनि नन्द पाचकाः" इत्यादि आगे कहेंगे) के विषे मरण होता है। और यदि मरणके खण्डसे प्रथमही मारकराशिकी स्थिर दशा आजाय तौ मरण नहीं होता है, किन्तु क्लेश होता है

तत्रर्क्षविशेषः । ३१ ।

अर्थ—यद्यपि दीर्घायु, मध्यमायु, और अल्पायुके भेद से मरणकालका साधारण निश्चय हुआ, परन्तु विशेषतः निर्णय करानेवाला कोई राशि विशेष है ॥ ३१ ॥

उस राशिका स्वरूप दिखाते हैं—

पापमध्ये पापकोणे रिपुरोगयोः पापे वा । ३२ ।

अर्थ—दो पापग्रहोंके मध्यमे जो राशि हो उस राशिकी दशाके विषे, और प्रथमदशाको भोग करनेवाले राशिसे पापग्रहयुक्त पञ्चम नवम द्वादश और अष्टम राशिकी दशाके विषे मरण होता है, सोई वृद्धकारिकामें भी कहा है ३२

" शुभ मध्ये मृतिर्नैव पापमध्ये मृतिर्भवेत् "

अर्थ—यह है कि शुभग्रहोंके मध्यगत राशिकी दशामें मृत्यु नहीं होती है, किन्तु पापग्रहोंके मध्यगत राशिकी दशामें मृत्यु होती है ॥ और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि "लग्नात्कारकाद्वा पापाक्रान्तत्रिकोणदशायां पापक्रान्तद्वादशाष्टमराशिदशायां वा निधनं भवति"—अर्थात् लग्नसे या आत्मकारकसे पापग्रहयुक्त त्रिकोणकी दशामें, अथवा पापग्रहयुक्त द्वादश और अष्टम राशिकी दशाके विषे मरण होता है ॥ ३२ ॥

तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ वा । ३३ ।

अर्थ—द्वादश और अष्टम राशिके स्वामियोंपर अन्य ग्रहोंकी दृष्टि न हो करके वलक्षीण चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि होय तो द्वादश और अष्टम राशिकी दशामें मरण होता है ॥ ३३ ॥

बहुवर्षव्यापिनी दशामें मरणकालका निर्णय लिखते हैं—

तत्राप्याद्यक्षीरिनाथदृष्टनवभागाद्वा । ३४ ।

अर्थ—पूर्वोक्त मारक राशियोंमेंभी प्रथम दशाश्रित राशिका स्वामी और उससे षष्ठराशिका स्वामी इन दोनों ग्रहोंकी नवांशकुण्डलीमें जिस नवांशपर दृष्टि पड़े उस नवांश-राशिकी अन्तर्दशामें मरणहोता है ॥ ३४ ॥

अब निर्याण विशेषका कथन करनेके निमित्त रुद्र-ग्रह लिखते हैं—

पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः । ३५ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम से जो अष्टमेश तिन दोनों अष्टमेशों में जो बलवान हो वह रुद्रसंज्ञक ग्रह होता है ४५॥

अब दूसरा रुद्रग्रह लिखते हैं—

अप्राण्यपि पापदृष्टः । ३६ ।

अर्थ—लग्नसे अष्टम और सप्तमसे अष्टमस्थानका स्वामी इन दोनो में जो निर्बल हो वह भी पापग्रहकी दृष्टि होय तौ रुद्रसंज्ञक होता है ॥ ३६ ॥

प्राणी और अप्राणी दो प्रकारके रुद्रग्रह कहे तहाँ प्रथम प्राणी (बली) रुद्रग्रहका फल लिखते हैं—

प्राणिनि शुभदृष्टे रुद्रशूलान्तमायुः । ३७ ।

अर्थ—बलवान् रुद्रग्रहको शुभग्रह देखताहोय तौ रुद्रग्रहसे प्रथम पञ्चम और नवमस्थानमें स्थित राशीकी दशाके विषे मरण होता है, या अल्प मध्य दीर्घायु भेदोंसे क्रमसे प्रथम द्वितीय और तृतीय भावसे नवम और पञ्चमस्थानमे स्थित राशिकी दशा पर्य्यन्त आयुदार्य होता है, अर्थात् अल्पायु-योग होय तौ प्रथम भावसे नवम पञ्चमस्थानमें स्थित राशिकी दशा पर्य्यन्त आयुर्बल होता

है, मध्यमायु योग होय तौ द्वितीयस्थानसे इत्यादि ॥ ३७ ॥

तत्रापि शुभयोगे । ३८ ।

अर्थ—तिस द्वितीय रुद्रग्रहको शुभग्रहका योग हो तौ भी रुद्रशूलान्त अर्थात् रुद्रग्रहसे प्रथम नवम और पञ्चमस्थानोंमें स्थित राशिकी दशामें मरण होता है ॥ ३८ ॥

व्यर्कपापयोगे न । ३९ ।

अर्थ—यदि रविके सिवाय अन्य पापग्रहों करके युक्त रुद्रग्रह होयँ तौ पूर्वोक्त फल नहीं होता है ॥ ३९ ॥

अब दोनो रुद्रग्रहोंके गुण विशेषोंसे फल कहते हैं—

मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे पापयोगेऽपिवा शुभदृष्टौ वा परतः । ४० ।

अर्थ—सबल अथवा निर्बल रुद्रग्रहको भौम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों, और शुभग्रहोंका योग न हो अथवा रुद्रसंज्ञक दोनों ग्रहोंको भौम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों तथा पापग्रहोंकी दृष्टि हो, अथवा रुद्रसंज्ञक दोनों ग्रहोंको भौम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों तथा शुभ ग्रहोंकी भी दृष्टि होय तौ योग होता है, और इन तीनों योगोंके पूर्ण होनेपर रुद्रग्रहसे प्रथम पञ्चम और नवमस्थानमें स्थित राशिकी दशासे आगे पर्य्यन्त आयुर्बल होता है । इस प्रकरणमें शुभग्रह और पापग्रह वृद्धोंने कहे हैं, यथा—

" अर्कारमन्द फणिनः क्रमात्क्रूरा यथाश्रयम् ।
चन्द्रोऽपि क्रूर एवात्र कचिदक्रारकाश्रये ॥१॥
गुरुध्वजकविज्ञा स्युर्यथा पूर्वं शुभग्रहाः ।"

अर्थ—सूर्य्य, शनि, भौम, और राहु यह क्रमसे उत्तरोत्तर क्रूरराशिके विषे स्थित हों तौ क्रूर होते हैं, और शुभराशिगत हों तौ क्रूर नहीं किन्तु शुभही होते हैं; और चन्द्रमाभी क्रूरराशिगतहो अथवा कहीं भौम के स्थानमें स्थित हो तौ क्रूर होता है; और गुरु, केतु, शुक्र, तथा बुध यह सब ग्रह क्रमसे उत्तरोत्तर अर्थात् गुरुसे केतु, केतुसे शुक्र शुक्रसे बुध यह सब ग्रह हों परन्तु क्रूरराशिके विषे स्थित हों तौ क्रूर और शुभ राशिके विषे स्थित हों तो शुभ होते हैं ॥ सोई संग्रहरूपसे वृद्धकारिकाओंके विषे कहा है—

प्रत्येकं शुभ राशिस्थ उच्चस्थो वा बुधः शुभः ।
गुरुशुक्रौ च सौम्यस्थौ ततोऽन्यत्राशुभाः स्मृताः ॥

अर्थ—प्रत्येक शुभराशिके विषे स्थित या उच्चस्थ बुध शुभ होता है, और गुरु तथा शुक्र भौम शुभ राशियोंके विषे स्थित हों तौ शुभ होते हैं, अन्यत्र अशुभ होते हैं ॥४०॥

रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण । ४१ ।

अर्थ—कदाचित् रुद्र ग्रहके आश्रित राशिमें भी प्रायः आयु समाप्त होजातीहै, यहाँ "प्रायेण" के ग्रहण करनेसे प्रतीत होता है, रुद्राश्रित के प्रथम तथा अनन्तरभी आयु पूरी होती है ॥ वृद्धोंने जो शूलमें आयुका विशेष निर्णय कराहै सो लिखते हैं—

"पापमात्रस्य शूलत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत् ।
मिश्रे मध्यमशूलर्क्षे शुभमात्रेऽन्त्यभे मृतिः" ॥ १ ॥

अर्थ—यदि दोनों रुद्र पापग्रह हों तौ प्रथम शूलमें

मरण होताहै, और एक रुद्र पापग्रह हो तथा एक शुभग्रह हो तो मध्यम शूलमें मरण होताहै, और यदि दोनो रुद्र शुभ ग्रह हों तो अन्त्य शूलमें मृत्यु होती है ॥ ४१ ॥

क्रिये पितरि विशेषेण । ४२ ।

अर्थ—मेष जन्मलग्न होय तो विशेषकरकें रुद्राश्रित राशिकी दशामें ही मरण होता है ॥ ४२ ॥

प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदा- युषाम् । ४३ ।

अर्थ—अल्पायु मध्यमायु और दीर्घायु योगवाले पुरुषोंकी क्रमसे प्रथम, द्वितीय, और तृतीय रुद्रशूलके विषे मृत्यु होती है, ॥ ४३ ॥

स्वभावेशो महेश्वरः । ४४ ।

अर्थ—स्व कहिये आत्मकारकसे भावेश कहिये अष्टम राशिका स्वामी महेश्वर ग्रह कहलाता है ॥ ४४ ॥

स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेश- प्राणी । ४५ ।

अर्थ—यदि आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी नीच उच्चस्थानमें या निजस्थानमें स्थित हो तो, द्वादश और

* कोईआचार्य इस सूत्रका "स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेशे प्राणी" ऐसा पाठ मानतेहैं, वहां ऐसा अर्थ करना चाहिये कि आत्मकारक यदि उच्च स्थानमें किसी अन्यग्रहकरके सहित स्थित हो तो आत्मकारकसे अष्टादश और अष्टमस्थानके स्वामीमें जो बलवान् हो वह महेश्वरसंज्ञक ग्रह होता है ॥

अष्टमस्थानके स्वामी ग्रहोंमे जो बलवान् हो वह महेश्वर ग्रह होता है; और यदि दोनो तुल्यबल हों तो दोनो महेश्वरसंज्ञक ग्रह होते हैं ॥ ४५ ॥

पाताल्याभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा रोगे ततः । ४६ ।

अर्थ—पाताल कहिये केतु या राहुकरके युक्त आत्मकारक होय वा आत्मकारकसे अष्टमस्थानमें केतु या राहु होय तौ उस आत्मकारकसे सूर्य्यादि क्रमके द्वारा गणना करनेसे जो ग्रह षष्ठ हो वह महेश्वरसंज्ञक होता है, और यदि ऐसे ग्रह दो तीन हों तौ उनमें जो बलवान् हो वह महेश्वरसंज्ञक होताहै, और यदि सबही बलवान् भी हों तौ सबही महेश्वरसंज्ञक होते हैं ॥ ४६ ॥

अब ब्रह्मयोग कहते हैं—

प्रभुभाववैरीशप्राणी पितृलाभप्राणानुचरो विषमस्थो ब्रह्मा । ४७ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोमें जो राशि बलवान् हो उससे षष्ठ–अष्टम–द्वादश इन राशियोंके स्वामियोंमें जो बलवान् हो, और लग्न तथा सप्तमराशिमें जो बलवान् हो, उसके पीछे जिस किसी विषमराशिके विषे स्थित ग्रह ब्रह्मसंज्ञक होता है, । लग्नके पीछेकी राशियें सप्तमादि द्वादशपर्य्यन्त हैं; और सप्तमके पीछेकी राशियें लग्नादि षष्ठपर्य्यन्त हैं ॥ ४७ ॥

ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः । ४८ ।

अर्थ—शनि–राहु–केतु इन तीनोंमेंसे किसीको ब्रह्मसंज्ञा नहीं होती है, यदि इनमेंसे किसी ग्रहको ब्रह्मसंज्ञा प्राप्त होय तौ उससे षष्ठग्रहकी ब्रह्मसंज्ञा जानै ॥ ४८ ॥

बहूनां योगे स्वजातीयः । ४९ ।

अर्थ—यदि अनेक ग्रहोंकी ब्रह्मसंज्ञाका योग होय तौ सजातीयकी ब्रह्मसंज्ञा होती है, अर्थात् आत्मकारकके सिवाय सबसे अधिक अंशवाले ग्रहकी ब्रह्मसंज्ञा होती है॥४९॥

राहुयोगे विपरीतम् । ५० ।

अर्थ—यदि ब्रह्मसंज्ञक ग्रह राहुकरके युक्त होय तौ उपरोक्त नियमका विपर्यय होता है, अर्थात् ब्रह्मसंज्ञक होनेवाले बहुतसे ग्रहोंमें जो सबसे कम अंशवाला हो वह ब्रह्मसंज्ञक होता है ॥ ५० ॥

ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः । ५१ ।

अर्थ—आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आत्मकारकसे अष्टम स्थानमें स्थित ग्रह ब्रह्मसंज्ञक होता है ५१

विवादे बली । ५२ ।

अर्थ—यदि आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आत्मकारकसे अष्टमस्थानमें स्थित ग्रह दोनोंकोही यदि ब्रह्मसंज्ञा प्राप्त हो तौ दोनोंमें जो बलवान् हो उसकी ही ब्रह्मसंज्ञा हो, अथवा सम्पूर्ण ब्रह्मसंज्ञक समान अंशवाले हों तौ ग्रहहीन राशिसे ग्रहयुक्तराशि बलवान् होता है, और एक ग्रहवाले राशिसे दो ग्रहवाला राशि बलवान् होता है- इत्यादि क्रमसे जो बलवान् हो वह ब्रह्मसंज्ञक होता है ॥ ५२ ॥

अब ब्रह्म और महेश्वरग्रहका फल कहते हैं—

ब्रह्मणो यावन्महेश्वर्क्षदशान्तेमायुः । ५३ ।

अर्थ—जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हो उस राशिकी दशासे लेकर महेश्वरसंज्ञक ग्रह जिस राशिमें हो उस राशिकी स्थिर दशा पर्य्यन्त आयु होता है ॥५३॥

अब महादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसका वर्णन करते हैं—

तत्रापि महेश्वरभावेशत्रिकोणाब्दे । ५४ ।

अर्थ—तत्रापि कहिये महेश्वरराशिकी स्थिर दशाके विषे भी महेश्वरसंज्ञक राशिसे आठवें स्थानका जो स्वामी हो, उससे प्रथम-पञ्चम-और नवम राशिकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है ॥ ५४ ॥

अब दो सूत्रोंकरके मारक ग्रहोंका वर्णन करते हैं—

स्वकर्म्मचित्तरिपुरोगनाथप्राणी मारकः । ५५ ।

अर्थ—आत्मकारकसे जो कर्म्मचित्त रोग नाथ कहिये तृतीय-षष्ठ-द्वादश और अष्टमस्थानके स्वामी इनमें जो बलवान् हो, वही मारक (संज्ञक) ग्रह होता है यदि तृतीयादि सम्पूर्ण स्थानोंके स्वामी समानबल हों तो सम्पूर्ण मारक होते हैं। तहाँ ऐसी शङ्का होती है कि-यदि अनेक ग्रह मारक हों तो किसकी दशाके विषे मरण हो ? तहाँ कहते हैं कि-तहाँ अल्पायु-मध्यमायु-और दीर्घायुके विचारसे जिसकी दशामें मरणकी सम्भावना हो, उसकीही दशा अथवा अन्तर्दशामें मरण कहना चाहिये, वहाँभी "चित्तनाथः प्रायेण" अ-

र्थात् षष्ठस्थानका स्वामी प्रायः मारक होता है, सोई वृद्ध-कारिकाके विषे भी कहा है—

"षष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः ।
प्रायेण मारको राशिदशास्वत्राविशेषतः ॥
षष्ठभे पापभूयिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः ।
षष्ठात्रिकोणगो वापि मुख्यमारक इष्यते ॥
मध्यायुषि मृतिः षष्ठे दशायामष्टमस्य वा ।
षष्ठत्रिकोणस्य पुनर्दीर्घाल्पविषये भवेत् ॥
षष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृतिमादिशेत् ।
षष्ठेशश्चेद्बलाढ्यः स्यात्तत्रिकोणे मृतिं वदेत् ॥
व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादिदशास्वपि ।
बलिनः शुक्रशशिनोर्ग्राह्यं षष्ठाष्टमादिकम् ॥"

अर्थ—यदि षष्ठ और अष्टम दोनों स्थानके स्वामी मारक हों तौ उन दोनोंमें अष्टमेश मुख्य मारक होता है, और यदि षष्ठस्थानमें पापग्रह अधिक स्थित हों तौ षष्ठेशही मुख्य मारक होता है; और षष्ठस्थानसे नवम तथा पञ्चम-स्थानके स्वामीभी मुख्य मारक होते हैं, जिस पुरुषका मध्यमा-युयोग हो उसका मरण षष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें होता है, और जिसका दीर्घायु अथवा अल्पायु योग हो, उसका षष्ठस्थानसे नवम अथवा पञ्चम राशिकी दशामें मरण होता है; परंतु यहाँ इतना विचार करना चाहिये कि यदि षष्ठ-स्थान (राशि) बलवान् हो तब तौ षष्ठस्थानसेंहीं नवम प-ञ्चम राशिकी दशामें मरण होता है, और षष्ठस्थानका स्वा-मी बलवान् हो तौ षष्ठेशसे नवम पंचम राशिकी दशामें

मरण होता है; यह सम्पूर्ण व्यवस्था कारकादि दशाओंमेंभी जाननी, और कहीं लग्न और सप्तम इन दोनों राशियोंमें जो बलवान हो उससे षष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है ॥ ५५ ॥

अब मारकग्रहका फल लिखते हैं—

२-१-५ तद्दसदशायां निधनम् । ५६ ।

अर्थ—मारकग्रह जिस राशिमें स्थित हो अथवा जिस राशिका स्वामी हो उस राशिकीही चर अथवा स्थिर दशामें मरण होता है ॥ ५६ ॥

अब मारकमहादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसको दिखाते हैं— २-१-५८

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे। ५७

अर्थ—तत्रापि कहिये मारकग्रहकी महादशामें भी, आत्मकारकसे जो सप्तमस्थान द्वादशेश–अष्टमेश–और षष्ठेशकी अन्तर्दशामें मरण होता है, वहाँभी यह विचार करना चाहिये कि द्वादशेशादिमें जो बलवान हो उसकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है; इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहाहै कि—

"चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः ।
स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ॥
बहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्मृतः ।"

अर्थ—"चरे चरस्थिर" इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारकी रीतिसे जो राशि आवे वहही मारक राशि होता है. इस प्रकार निर्णय है । यदि ऐसे बहुत राशि आये तो उनमें जो बल-

वान् हो वह मारक होता है; तात्पर्य्य यह है कि जन्मलग्नेश और अष्टमेश, तथा जन्मलग्न और चन्द्रमा, या जन्मलग्न और होरालग्न दोनों जिस राशिके विषे स्थित हों वह राशि मारक होता है, यदि ऐसे अनेक राशि हों तौ उनमें जो बली हो वह मारक होता है, तौ उस राशिकी दशामें अथवा उस राशिका स्वामी जहां स्थित हो उस राशिकी दशामें मरण होता है। और कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि—

"चर इत्यादिनायुर्यत्तत्समाप्युचितो भवेत्।
यो राशिः स तु विज्ञेयो मारकः सूत्रसंमतः॥"

अर्थ—चर इत्यादि श्लोककरके जो दीर्घ मध्यादि आयु आवै, और पूर्णमित्यादि श्लोकसे स्पष्ट होय, वह आयु जिस राशिमें समाप्त होय उस राशिको ही मारक जानै, यह अर्थही सूत्रसंमत है॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः।

अथ पिता आदिके मरणसमयका बोध करानेके निमित्त प्रथम पितृकारक आदिको वर्णन करते हैं—

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः। १।

अर्थ—सूर्य्य और शुक्र इन दोनोंमें जो बलवान् हो वह पितृकारक होता है॥ १॥

चन्द्रारयोर्जननी। २।

मरण होता है; यह सम्पूर्ण व्यवस्था कारकादि दशाओंमेंभी जाननी, और कहीं लग्न और सप्तम इन दोनों राशियोंमें जो बलवान हो उससे षष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है ॥ ५५ ॥

अब मारकग्रहका फल लिखते हैं—

तदृक्षदशायां निधनम् । ५६ ।

अर्थ—मारकग्रह जिस राशिमें स्थित हो अथवा जिस राशिका स्वामी हो उस राशिकीही चर अथवा स्थिर दशामें मरण होता है ॥ ५६ ॥

अब मारकमहादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसको दिखाते हैं—

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे।५७।

अर्थ—तत्रापि कहिये मारकग्रहकी महादशामें भी, आत्मकारकसे जो सप्तमस्थान द्वादशेश—अष्टमेश—और षष्ठेशकी अन्तर्दशामें मरण होता है, वहाँभी यह विचार करना चाहिये कि द्वादशेशादिमें जो बलवान हो उसकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है; इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहाहै कि—

"चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः ।
स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ॥
बहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्मृतः ।"

अर्थ—"चरे चरस्थिर" इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारकी रीतिसे जो राशि आवे वहही मारक राशि होता है. इस प्रकार निर्णय है । यदि ऐसे बहुत राशि आये तो उनमें जो बल-

अर्थ—पिता आदिकी आयु विचारनेमें अन्य कारक तथा अन्य रीतिसे कहेहुए निर्य्याण शूल दशा आदिका भी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

अब पितृनिर्य्याणके विषयमें कुछ विशेषता लिखते हैं—

अर्कज्ञयोगे तदाश्रये लग्नमेषदशायां पितुरित्येके । ८ ।

अर्थ—और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि लग्नसे द्वादश राशिका स्वामी बुध या सूर्य्य हो, अर्थात् सिंह कन्या और मिथुन इन राशियोंमेंसे कोई एक राशि लग्नसे द्वादश-स्थानमें स्थित हो और उसके विषे सूर्य्य अथवा बुधका योग हो तब लग्नसे पञ्चम राशिकी दशाके विषे पिताका मरण होता है ॥ ८ ॥

अब बाल्यावस्थामेंभी माता पिताके मरणका योग कहते हैं कि—

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वाद-शाब्दात् । ९ ।

अर्थ—पितृकारक और मातृकारक बलवान् हों अथवा निर्बल हों और इनके विषे सूर्य्यका योग न हो, तथा अन्य पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो बारह १२ वर्षसे पहिले ही क्रमसे माता और पिताका मरण होता है ॥ ९ ॥

अब स्त्रीका निधनयोग कहते हैं कि—

गुरुशूले कलत्रस्य । १० ।

अर्थ—जिस राशिके विषे गुरुकी स्थिति हो उस रा-

अर्थ—चन्द्रमा और मङ्गल इन दोनोंमें जो बल
हो वह मातृकारक होता है ॥ २ ॥

अप्राण्यपि पापदृष्टः । ३ ।

अर्थ—रवि और शुक्र इन दोनोंमें तथा चन्द्रमा औ
मङ्गल इन दोनोंमें जिसको पापग्रह देखते हों तौ वह बली
भी क्रमसे पितृकारक और मातृकारक होते हैं ॥ ३ ॥

अब बली पितृकारकादिका फल कहते हैं—

प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छूले निधनं मातापित्रोः । ४ ।

अर्थ—पितृकारक अथवा मातृकारक बलवान् हो औ
उसके ऊपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तौ वह पितृकारक य
मातृकारक ग्रह जिस राशिमें स्थित हो, उस राशिसे त्रि
कोण अर्थात् नवम और पञ्चम राशिकी दशाके विषे माता
वा पिताका मरण होता है ॥ ४ ॥

तद्भावेशे रवपष्टबले । ५ ।

तच्छूल इत्यन्ये । ६ ।

अर्थ—बलवान् अथवा निर्बल पितृकारक तथा मातृ
कारकसे जो अष्टमस्थान हो उसका स्वामी, बलवान् अथवा
निर्बल पितृकारक और मातृकारकसे अधिक बली होय तौ
जिस राशिके विषे अष्टमस्थानका स्वामी स्थित हो उस रा-
शिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चम राशिकी दशाके
विषे पिता तथा माताका मरण होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

आयुषि चान्यत् । ७ ।

अर्थ—पिता आदिकी आयु विचारनेमें अन्य कारक तथा अन्य रीतिसे कहेहुए निर्य्याण शूल दशा आदिका भी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

अब पितृनिर्य्याणके विषयमें कुछ विशेषता लिखते हैं—

अर्कज्ञयोगे तदाश्रये लग्नमेषदशायां पितुरित्येके ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि लग्नसे द्वादश राशिका स्वामी बुध या सूर्य्य हो, अर्थात् सिंह कन्या और मिथुन इन राशियोंमेंसे कोई एक राशि लग्नसे द्वादशस्थानमें स्थित हो और उसके विषे सूर्य्य अथवा बुधका योग हो तब लग्नसे पञ्चम राशिकी दशाके विषे पिताका मरण होता है ॥ ८ ॥

अब बाल्यावस्थामेंभी माता पिताके मरणका योग कहते हैं कि—

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वादशाब्दात् ॥ ९ ॥

अर्थ—पितृकारक और मातृकारक बलवान् हों अथवा निर्बल हों और इनके विषे सूर्य्यका योग न हो, तथा अन्य पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो बारह १२ वर्षसे पहिले ही क्रमसे माता और पिताका मरण होता है ॥ ९ ॥

अब स्त्रीका निधनयोग कहते हैं कि—

गुरुशूले कलत्रस्य ॥ १० ॥

अर्थ—जिस राशिके विषे गुरुकी स्थिति हो उस रा-

शिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चम राशिकी दशाके विषे स्त्रीका मरण होता है ॥ १० ॥

अब पुत्रादिका निधनयोग कहते हैं—

तत्तच्छूले तेषाम् । ११ ।

अर्थ—पुत्र और मातुल (मामा) आदि कारककी राशिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चमराशिकी दशाके विषे पुत्रादिका मरण होता है ॥ ११ ॥

अब निधनमें शुभ और अशुभ भेद कहते हैं कि—

कर्म्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् । १२ ।

अर्थ—लग्नसे या कारकसे तृतीयस्थान पापग्रहसे युक्त हो अथवा पापग्रहसे देखागया होय तो अशुभ अर्थात् दुर्गतिपूर्वक मरण होता है ॥ १२ ॥

शुभं शुभदृष्टियुते । १३ ।

अर्थ—लग्नसे या कारकसे तृतीयस्थान शुभग्रहसे युक्त हो अथवा शुभग्रहसे देखागया होय तो शुभ कहिये ज्वरादि करके श्रेष्ठगतिपूर्वक मरण होता है ॥ १३ ॥

मिश्रे मिश्रम् । १४ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके ग्रहोंसे युक्त हो अथवा शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके ग्रहोंसे देखागया होय तो शुभा-शुभात्मक मरण होता है ॥ १४ ॥

अब मरणके निमित्त दिखाते हैं—

आदित्येन राजमूलात् । १५ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान सूर्य्यकरके युक्त हो अथवा सूर्य्यकरके देखागया होय तो राजाके हेतुसे दुर्गतिपूर्वक अशुभ मरण होता है ॥ १५ ॥

चन्द्रेण यक्ष्मणः । १६ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान चन्द्रमाकरके युक्त हो अथवा चन्द्रमाकरके देखा गया होय तो राजयक्ष्मा अर्थात् क्षयी रोगसे मरण होता है ॥ १६ ॥

कुजेन व्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः । १७ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान मङ्गलकरके युक्त होय अथवा मङ्गल करके देखा गया होय तो व्रण (फोड़ा)-शस्त्र अग्निसे जलना इत्यादि दुर्गति कारणोंके द्वारा मरण होता है ॥ १७ ॥

शनिना वातरोगात् । १८ ।

अर्थ—यदि लग्नसे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शनिकरके युक्त हो अथवा शनिकरके देखागया होय तो वातरोगके द्वारा मरण होता है ॥ १८ ॥

मन्दमान्दिभ्यां विषसर्पजलोद्बन्धनादिभिः । १९ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शनि और गुलिककरके युक्त हो अथवा शनि और गुलिक* करके देखा गया होय तो विष (जहर)-सर्प-जल-और उद्बन्धन (फाँसी) आदिके द्वारा अशुभ मरण होता है ॥ १९ ॥

* गुलिक स्पष्ट करनेकी रीति पहिले कह चुके हैं।

केतुना विपूची जलरोगाद्यैः । २० ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान केतुकरके युक्त हो अथवा केतुकरके देखागया होय तौ विपूचिका (हैजा) और जलरोग (जलोदर) आदिके द्वारा मरण होता है ॥ २० ॥

चन्द्रमान्दिभ्यां पूगमदान्न कवलादिभिः क्षणिकम् । २१ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान चन्द्रमा और गुलिककरके युक्त हो अथवा देखागया होय तौ पूगफल (सुपारी) के मद (नशे) मे, अथवा अन्नके ग्रास आदिके द्वारा क्षणमात्रमें मरण होजाता है ॥ २१ ॥

गुरुणा शोफारुचिवमनाद्यैः ॥ २२ ॥

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान बृहस्पतिकरके युक्त हो अथवा बृहस्पतिकरके देखागया होय तौ शोफ (रोगविशेष) अरुचि और वमन आदिके द्वारा मरण होताहै ॥ २२ ॥

शुक्रेण मेहात् । २३ ।

लग्नसे या आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुक्रकरके युक्त हो अथवा शुक्रकरके देखागया होय तौ प्रमेह रोगसे मरण होताहै ॥ २३ ॥

मिश्रे मिश्रात् । २४ ।

अर्थ—लग्नसे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान पूर्वोक्त

कई एक ग्रहोंकरके युक्त हो, अथवा देखागया होय तो अनेक रोगोंके द्वारा मरण होता है ॥ २४ ॥

चन्द्रदृग्योगान्निश्चयेन । २५ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान कई एक ग्रहोंकरके युक्त अथवा देखा हुआ होकर, चन्द्रमा करके युक्त अथवा देखा जाय तो अवश्यही अनेक रोगोंके द्वारा मरण होता है, इससे यह ध्वनित हुआ कि अन्य ग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होने परभी यदि चन्द्रमाका दृष्टि या योग नहीं होय तो मरणमें सन्देह होता है ॥ २५ ॥

अब दो सूत्रोंकरके मरणके देश विशेषका वर्णन करते हैं—

शुभैः शुभदेशे । २६ ।

अर्थ—यदि लग्नसे या आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुभग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो शुभ देशके विषे मरण होता है ॥ २६ ॥

पापैः कीकटे । २७ ।

अर्थ—यदि लग्नसे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान पापग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो मगध आदि पाप देशोंके विषे मरण होता है । (यदि शुभ और पाप दोनों प्रकारके ग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो, काशी आदि शुभ देशोंमें मरण होता है और न कीकट (मगध) आदि पाप देशोंमें मरण होता है, किन्तु पाप पुण्य प्रधान मध्यम श्रेणीके देशोंमें मरण होता है ॥ २७ ॥

ज्ञानपूर्वक मृत्यु होगी या अज्ञानपूर्वक होगी इसका निश्चय लिखते हैं—

गुरुशुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वम् । २८ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान बृहस्पति अथवा शुक्र करके युक्त हो अथवा देखागया हो तौ ज्ञानपूर्वक मरण होता है ॥ २८ ॥

अन्यैरन्यथा । २९ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान उपरोक्त दो ग्रहोंको छोड़ अन्य ग्रहोंकरके युक्त हो या देखाजाय तौ अज्ञानपूर्वक मरण होता है ॥ २९ ॥

लेपनजनकयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिः पित्रोर्न संस्कर्त्ता । ३० ।

अर्थ—लग्न और द्वादशके मध्यमें शनि और राहुकी स्थिति हो अथवा शनि और केतुकी स्थिति होय तौ माता पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता ॥ ३० ॥

लेपादि पूर्वार्द्धे जनकाद्यपरार्द्धे । ३१ ।

अर्थ—लग्नादि पूर्वार्द्धमें अर्थात् लग्न आदि प्रथम षट्कमें, और द्वादशाद्यपरार्द्धे कहिये द्वादश आदि उत्तर षट्कमें शनि राहु-केतुके होनेपर क्रमसे माता और पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता, अर्थात् लग्नादि षट्कमें शनि राहु अथवा शनि केतु हों तौ माताका संस्कार करनेवाला नहीं होता है, और सप्तमादि षट्कमें शनि राहुके अथवा शनि केतुकी स्थिति होय तौ पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता है, राहुकी और केतुकी एक स्थानमें स्थिति नहीं हो सक्ती, इस कारण तीनोंकी एकत्र स्थिति नहीं कही ॥ ३१ ॥

शुभदृग्योगान्न । ३२ ।

अर्थ—यदि लग्न द्वादशके मध्यमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग होय तौ पूर्वोक्त फल नहीं होता है अर्थात् माता पिताका संस्कार करनेवाला होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अर्थ—अब दशाभेद और बलभेद आदिका वर्णन करते हुए प्रथम नवांश दशाको कहते हैं कि—

विषमे तदादिर्नवांशः । १ ।

अर्थ—यदि जन्मलग्न विषमराशिके विषे होय तौ लग्न आदि नवांशदशा होती है, अर्थात् लग्न आदि सम्पूर्ण राशियोंकी नवांशदशा होती है, नौ नौ वर्षपर्य्यन्त एक एक राशिका भोग नवांशदशा होती है ॥ १ ॥

अन्यथाऽऽदर्शादिः । २ ।

अर्थ—अन्यथा अर्थात् सम राशिके विषे जन्मलग्न होय तौ सप्तम राशिसे लेकर सम्पूर्ण राशियोंकी नवांश दशा होती है, तहाँ शङ्का होती है कि—आदर्श नाम तौ सम्मुखका है, यहाँ आदर्श पदसे सप्तमका ग्रहण क्यों किया ? तहाँ कहते हैं कि कुण्डलीके विषे सप्तमस्थानही सम्मुख होता है इस कारण आदर्शपदका अर्थ सप्तम किया है ॥२॥

अब स्थिरदशाका वर्णन करते हैं—

शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम् । ३ ।

अर्थ—चर राशिकी स्थिर दशा सात ७ वर्षकी होती है, स्थिर राशिकी स्थिर दशा आठ ८ वर्षकी होती है, और द्विस्वभाव राशिकी स्थिर दशा नौ ९ वर्षकी होती है जैसे कि मेषकी सात ७ वर्षकी स्थिर दशा होती है, तथा वृषकी स्थिर दशा आठ ८ वर्षकी होती है. और मिथुन राशिकी स्थिर दशा नौ ९ वर्षकी होती है फिर कर्कराशिकी सात ७ वर्षकी इस क्रमसेही द्वादश राशि पर्य्यन्त, स्थिर दशाके वर्ष जानने चाहिये ॥ ३ ॥

अब स्थिरदशाका आरम्भस्थान कहते हैं—

ब्रह्मादिरेषा । ४ ।

अर्थ—यह स्थिरदशा उस राशिसे आरम्भ करनी चाहिये कि जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों ॥४॥

अथ प्राणः । ५ ।

अब यहाँसे आगे बलप्रकरणका कथन करेंगे ॥ ५ ॥

कारकयोगः प्रथमो भानाम् । ६ ।

अर्थ—कारक योगराशियोंका आदि बल होता है ॥६॥

साम्ये भूयसा । ७ ।

अर्थ—यह योग समान होने पर अर्थात् दो राशियोंमें ह होय तो जिस राशिके विषे थोड़े ग्रह स्थित हों उससे च ग्रहोंकरके युक्त राशि बली होता है ॥ ७ ॥

ततस्तद्धारि

अर्थ—यदि दोनों राशियोंके विषे समसंख्याकही ग्रह स्थित हों तौ जिस राशिके विषे उच्च आदि (उच्चस्थ स्वगृहस्थ, मित्रगृहस्थ) ग्रह स्थित हों वह राशिही बलवान् होता है ॥ ८ ॥

अब राशियोंका स्वाभाविक बल कहते हैं—

निसर्गस्ततः । ९ ।

अर्थ—यदि पूर्वोक्त उच्चस्थत्व, स्वगृहस्थत्व, और मित्रगृहस्थत्व बलभी समान होय, तौ निसर्गबल ग्रहण करना, अर्थात् चर राशिसे स्थिर राशिको बली जानना, और स्थिर राशिसे द्विस्वभावराशिको बली जानना, सोई वृद्धोंने कहा है–

अग्रहात्सग्रहोज्यायान्सग्रहेष्वधिकग्रहः ॥
साम्ये चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ॥

अर्थ—ग्रह हीन राशिसे ग्रहयुक्त राशि बली होता है, और ग्रहयुक्त राशियोंके विषे अधिक ग्रहों करके युक्त राशि बलवान् होता है, तथा ग्रहभी समानही होय तौ चर, स्थिर और द्विस्वभाव राशि क्रमसे बली होते हैं ॥ ९ ॥

तदभावे स्वामिन इत्यम्भावः । १० ।

अर्थ—जो राशि पूर्वोक्त बल करके रहित हो वह अपने स्वामीके पूर्वोक्त बलकरकेभी बलवान् हो जाता है ॥ १० ॥

आग्रायतोऽत्र विशेषात् । ११ ।

अर्थ—एक राशिके विषेही बहुतसे ग्रह स्थित हों और उनका राशिद्वारक बल समान हो तौभी इस ग्रन्थके विषे आग्रायत (अधिक अंशवाला) ग्रह बलवान् होता है ॥ ११ ॥

प्रातिवेशिकः पुरुषे । १२ ।

अर्थ—पुरुष कहिये ओज (विषम) राशिका प्रातिवेशिक कहिये पासकी राशिके विषे वर्त्तमान अर्थात् द्वितीय और द्वादशस्थानमें स्थित ग्रहभी अपनी राशिको बली करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

इति प्रथमः । १३ ।

अर्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे प्रथमबल वर्णन किया।

स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः । १४ ।

अर्थ—स्वामि योग, गुरु योग, बुध योग, और स्वामिदृष्टि, गुरुदृष्टि, तथा बुधदृष्टि यह द्वादश राशियोंमे प्रत्येक राशिका बल होता है. यह छः प्रकारका बल द्वितीयबल कहाता है ॥ १४ ॥

स्वामिनस्तृतीयः । १५ ।

अर्थ—स्वामी कहिये राशिके अधिपतिका वक्ष्यमाण तीन प्रकारका बल होता है ॥ १५ ॥

अब राशियोंके स्वामीका बल-अबल दिखाते हैं—

स्वात्स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौर्बल्यम् । १६ ।

अर्थ—आत्मकारकसे कण्टक आदिके विषे तिस तिस स्थानके स्वामी ग्रहको अपार दुर्बलता होती है, अर्थात् आत्मकारकसे केन्द्र (१-४-७-१०) स्थानके विषे और

आत्मकारकसे आपोक्लिम (३-६-९-१२) स्थानके विषे तिस स्थानके स्वामी ग्रह अपार दुर्बल होता है, यहाँ 'अपार' पदका अर्थ यह है कि आत्मकारकसे केन्द्रस्थानमें स्थित ग्रह पूर्णबली होता है, और 'पणफर' स्थानमें स्थित ग्रह अर्द्धबली होता है, तथा 'आपोक्लिम' स्थानमें स्थित ग्रह शून्यबली होता है, ऐसा अर्थ इस कारण किया कि 'अपार' पदमें अ-पा-र' यह तीन अक्षर हैं यहाँ अकारका अर्थ शून्य है, पाकारका अर्थ एक है, और रकारका अर्थ दो है, इस सबका दौर्बल्यके साथ अन्वय करके शून्यबली, अर्द्धबली पूर्णबली ऐसा अर्थ होता है ॥ १६ ॥

चतुर्थतः पुरुषे । १७ ।

अर्थ—"पापदृग्योग"-इत्यादि सूत्रसे जो आगे चतुर्थबलका वर्णन करेंगे तिस चतुर्थबलसेभी पुरुष कहिये विषम राशिके विषे बल होता है ॥ १७ ॥

अब निर्य्याणशूलदशा लिखते हैं—

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिशूलदशानिर्य्याणे । १८ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो उपरोक्त बलकी रीतिसे बलवान् हो, उससे लेकर नौ ९ वर्ष प्रत्येक राशिकी दशाका भोग होता है, जब पूर्वोक्त अधिक बलवाले राशिसे कण्टक (त्रिकोण १–५–९) राशिकी दशा आती है तबहीं मरण होता है ॥ १८ ॥

अब पिताकी निर्य्याणदशा कहते हैं—

पितृलाभपुत्रप्राण्यादिः पितुः । १९ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि और सप्तमस्थानसे जो नवमराशि इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उससे प्रारम्भ करके गणना करनेसे नौ २ वर्षकी प्रत्येक राशिकी दशा होती है, जब पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (त्रिकोण १-५-९) की दशा आवै तब पिताका मरण होता है॥१९॥

अब माताकी निर्य्याणदशा कहते हैं—

आदर्शादिर्मातुः । २० ।

अर्थ—लग्नसे जो चतुर्थराशि हो और सप्तमस्थानसे जो चतुर्थराशि हो इन दोनों राशियोंमें जो बलवान् राशि हो उससे लेकर नौ २ वर्षकी प्रत्येक राशिकी दशा होती है, जब पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (त्रिकोण १-५-९) की दशा आवै तब माताका मरण होता है ॥ २० ॥

अब भ्राताकी निर्य्याणदशा कहते हैं—

कर्म्मादि भ्रातुः ।२१।

अर्थ—लग्नसे जो तृतीय हो, और सप्तमस्थानसे जो तृतीय हो इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उस राशिसे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, पूर्वोक्त बलवान् राशिसे जो कण्टक (१-५-९) राशि हो उसकी दशा हो तो भ्राताका मरण होता है ॥ २१ ॥

मात्रादिर्भगिनीपुत्रयोः । २२ ।

अर्थ—लग्नसे जो पञ्चम हो और सप्तमस्थानसे जो पञ्चम हो, इन दोनोंमें बलवान् राशिसे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, जब उसी पूर्वोक्त

बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तब भगिनी (बहिन) और पुत्रका मरण होता है॥ २२ ॥

व्ययादिर्ज्येष्ठस्य । २३ ।

अर्थ—लग्नसे जो एकादश और सप्तमस्थानसे जो एकादश, इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उससे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है जब उसी पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तौ ज्येष्ठ भ्राताका मरण होता है ॥ २३ ॥

पितृवत्पितृवर्गे । २४ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि और सप्तमस्थानसे जो नवमराशि, इन दोनोंमें जो बलवान् हो उससे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, जब उसी पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तब जिस प्रकार पिताका मरण होता है, तिसीप्रकार पितृव्य (चचा) आदिकाभी मरण होता है ॥ २४ ॥

अब ब्रह्मदशा लिखते हैं—

ब्रह्मादिपुरुषे समा दासान्ताः । २५ ।

अर्थ—पुरुष कहिये विषमराशिके विषे जन्मलग्न होय तौ जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों उस राशिसे लेकर सम्पूर्ण राशियोंकी ब्रह्मदशा होती है, इस ब्रह्मदशाके विषे प्रत्येक राशिके अपने स्थानसे षष्ठस्थानके स्वामीपर्यन्त वर्ष होते हैं, जैसे कि—यदि मेषराशिकी दशाके वर्ष जानने हों तौ मेषराशिसे षष्ठ राशि हुआ कन्याराशि तिस कन्याराशिका स्वामी बुध कुम्भराशिमें स्थित हो तब

मेषराशिसे कुम्भराशि ग्यारहवीं होती है इस कारण मेषराशिकी दशाके वर्षभी ग्यारहही होते हैं ॥ २५ ॥

२-३-२६ स्थानव्यतिकरः । २६ ।

अर्थ—इस ब्रह्मदशाके विषे स्थानका व्यतिकरभी है, अर्थात् सप्तमराशिका सम्बन्ध है, इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि यदि समराशिके विषे जन्मलग्न होय तौ जिस स्थानमें ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों उस स्थानसे सप्तम राशिकी तौ प्रथमदशा होती है, तदनन्तर व्युत्क्रमकी रीतिसे अन्यराशियोंकी दशा होती है यहाँ भी राशिके वर्ष जाननेकी रीति पूर्वोक्तही है ॥ २६ ॥

अव चतुर्थवल दिखाते हैं—

पापदृग्योगास्तुङ्गादिग्रहयोगः । २७ ।

अर्थ—पापग्रहोंकी दृष्टि और योग राशिका बल होताहै, तथा अपने उच्चमूल त्रिकोण, स्वर्क्ष अधिमित्र, और मित्रराशिके विषे स्थित शुभग्रहका योगभी राशिका बल होता है,। तीन पूर्वोक्त और एक यह चारों बल समाप्त हुये२७

अव पूर्वोक्त चरदशाके विषे किस राशिकी दशाके अनन्तर किस राशिकी दशा होनी चाहिये. यह कहते हैं—

पञ्चमे पदक्रमाद्याक्प्रत्यक्त्वम् । २८ ।

अर्थ—तीन तीन राशियोंका एक एक पद होता है, इस प्रकार चार पद होते हैं, उससे नवमस्थानके विषे पदके क्रमकरके और प्रत्यक्त्व होताहै, अर्थात् उससे नवमस्थानके विषे यदि ओज यहिये विषमपदमेंका कोई राशि स्थित होय तौ उसके क्रमसे राशियोंकी दशा होती है, और समपदमेंका

कोई राशि पूर्वोक्तस्थानमें स्थित होय तौ लग्नके व्युत्क्रमसे दशा होती है ॥ २८ ॥

चरदशायामत्र शुभः केतुः । २९ ।

अर्थ—इस चरदशाके विषे केतु शुभ होता है अर्थात् शुभग्रह होकर फल देताहै ॥ २९ ॥

इति श्रीपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः । ३ ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

द्वितीयं भावबलं चरनवांशे । १ ।

अर्थ—चरराशिकी नवांश दशाके विषे फलादेश कहनेके अर्थ "स्वामिगुरुशेदृग्योग"–इत्यादि सूत्रके अनुसार द्वितीय भावबलका ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

अब द्वारबाह्यराशियोंको दिखाते हैं—

दशाश्रयो द्वारम् । २ ।

अर्थ—जिस राशिकी जिस समय चर, स्थिर, द्विःस्वभाव, इन दशाओंमेंसे जो दशा हो, उस दशावाले राशिकोही 'द्वार' कहते हैं, और इस राशिकाही 'पाकर' नामसेभी व्यवहार करते हैं ॥ २ ॥

अर्थ—लग्नसे जितनी संख्या अगले स्थान पर द्वारराशि स्थित हो, द्वार राशिसे उतनी संख्या अगले स्थानमें स्थित राशिको 'बाह्य'राशि कहते हैं, और बाह्यराशिकोही भोगराशि नामसे व्यवहार करते हैं, यहाँ लग्नशब्दसे प्रसिद्धलग्नका ग्रहण नहीं होता है, किन्तु जन्मकालमें प्रथमही प्रथम जिस राशिकी दशाका आरम्भ हो वह राशिही लग्नपदसे ग्रहण होताहै, वह प्रसिद्ध लग्न हो, चाहे सप्तम हो चाहे ब्रह्मसंज्ञक ग्रहाश्रित राशि हो ॥ ३ ॥

अब द्वार बाह्यराशियोंका फल कहते हैं—

तयोः पापे बन्धयोगादिः । ४ ।

अर्थ—तिन द्वार और बाह्यराशिके विषे पापग्रह स्थित होय तौ तिन द्वार और बाह्य राशिकी दशाके विषे बन्ध आदि योग होता है, सो वृद्धकारिकामें कहा है—

"पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा"

अर्थ—पाकराशि कहिये द्वारराशिके विषे और भोगराशि कहिये बाह्यराशिके विषे पापग्रह हों तौ देहमें पीडा और मनमें व्यथा होती है ॥ ४ ॥

स्वर्दोऽस्य तस्मिन्नोपजीवस्य । ५ ।

अर्थ—यदि द्वार और बाह्यराशिके विषे स्थित पापग्रह बृहस्पतिके समीपमें स्थित हों अर्थात् बृहस्पतिकरके युक्त होंय तौ पूर्वोक्त फल नहीं होता है ॥ ५ ॥

भग्रहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् । ६ ।

अर्थ—राशि और ग्रहोंकरके होनेवाले योगोंके विषे

जो फल कहे हैं वह सम्पूर्ण फलद्वार और बाह्यराशियोंके विषेभी जानने ॥ ६ ॥

अब केन्द्रदशाके आरम्भमें स्थानभेद दिखाते हैं—

पितृलाभप्राणितोयम् । ७ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोमें जो बलवान् हो उस राशिसे लेकर इस केन्द्रदशाका आरम्भ होता है। इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है—

"बलिनः शुक्रशशिनोः केन्द्राख्यान्तु दशां नयेत्।
पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत् ॥"

अर्थ—यदि पुरुषके फलादेशका विचार करना होय तो शुक्र कहिये लग्न और शशि कहिये सप्तम जो बलवान् हो उस राशिसे केन्द्रदशाका आरम्भ होता है, और यदि स्त्रीके फलादेशका विचार करना होय तो सप्तमसेही केन्द्रदशा लगती है ॥ ७ ॥

अब केन्द्रदशाके क्रममें भेदोंको कहते हैं—

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् । ८ ।

अर्थ—यदि चरराशि लग्न अथवा सप्तममें स्थित होय तो लग्न और सप्तम इन दोनोमें जो बलवान् हो उससे आरम्भ करके क्रमसे केन्द्रदशा लगती है, और वहाँभी यदि विषमपद होय तो प्रथम द्वितीय इत्यादि क्रमसे और समपद होय तो द्वादश एकादश इत्यादि व्युत्क्रमरीतिसे केन्द्रदशा लगती है ॥ ८ ॥

द्वितीये रवितः । ९ ।

अर्थ—यदि लग्न अथवा सप्तमस्थानमें द्वितीय कहिये

स्थिर राशि स्थित होय तौ लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उस बलवान् राशिसे षष्ठस्थानमें जो राशि हो उस राशिसे केन्द्रदशाका प्रारम्भ होता है, यहाँ यदि विषमपद होय तौ क्रमसे और समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है ॥ ९ ॥

पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि । १० ।

अर्थ—लग्न अथवा सप्तमस्थानके विषे तृतीय कहिये द्विःस्वभावराशि स्थित होय तौ लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उस राशिसे चतुष्टय आदि अर्थात् प्रथम केन्द्रकी तदनन्तर पणफरकी और तदनन्तर आपोक्लिमकी दशा लगती है, यदि विषमपद होय तौ क्रमसे और समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है. इस दशामें भी प्रत्येक राशिकी नौ ९ वर्षकी दशा होती है ॥ १० ॥

अब कारक केन्द्रादि दशाओंको कहते हैं—

स्वकेन्द्रस्थाद्याः स्वामिनो नवांशानाम् । ११ ।

अर्थ—आत्मकारकसे केन्द्रस्थानमें, आत्मकारकसे पणफरस्थानमें तथा आत्मकारकसे आपोक्लिमस्थानमें स्थित राशियें क्रमसे नवांशदशाके वर्षोंकी स्वामी होती हैं, तहाँभी जो राशि सबसे अधिक बलवान् हो वह प्रथम, उससे कम बलवान् हो सो उसके अनन्तर इस क्रमसे जानना, सोई वृद्धकारिकाओंमें कहा है—

"प्रतिभं नव वर्षाणि कारकाश्रयराशितः ।
जन्म सम्पद्विपत्क्षेमः प्रत्यरिः साधको वधः ॥
मैत्रं परममैत्रञ्चेत्येवमन्तर्दशां नयेत्" ।

अर्थ—जिस राशिके विषे कारकसंज्ञक ग्रह स्थित होय, उस राशिसे प्रारम्भ करके प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, उन वर्षोंमें प्रथम वर्ष जन्म, द्वितीय सम्पत्, तृतीय विपत्, और चतुर्थ क्षेम, पञ्चम प्रत्यरि, षष्ठ साधक, सप्तम वध, अष्टम मैत्र, और नवम परममैत्र नामवाला होता है, और इन नामोंके अनुसारही फल होते हैं, इसीप्रकार अन्तर्दशाभी जानै ॥ ११ ॥

अब अन्य केन्द्रदशा कहतेहैं—

पितृचतुष्टयवैषम्यबलाश्रयः स्थितः ॥ १२ ॥

अर्थ—लग्न आदि चारों (१–४–७–१०) केन्द्रस्थानोंमें स्थित जो राशि तिन राशियोंमें जो राशि अधिक बलवान् हो उसकी प्रथमदशा होती है, यहाँभी प्रत्येकराशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम, इन स्थानोंमें स्थित राशियोंमेंसे जो सबसे अधिक बली हो उसकी प्रथम, और जो उससे कम बली हो उसकी तदनन्तर इस क्रमसे जानना ॥ १२ ॥

अब आत्मकारक आदि ग्रहोंकी दशाके वर्ष लानेकी रीति लिखते हैं—

स तल्लाभयोरावर्त्तते ॥ १३ ॥

अर्थ—यह कारकग्रह लग्न और सप्तमस्थानके विषेही आवृत्ति किया जाता है- तात्पर्य्य यह है कि लग्नसे क्रमकी रीतिसे कारक ग्रहपर्य्यन्त गणना करनेसे और सप्तमसे व्युत्क्रम (उलटी ओर) से कारक ग्रहपर्य्यन्त गणना कर-

जैसे जिस ओरकी राशिसंख्या अधिक होय उस ओरकी राशिसंख्याके समान कारकग्रहकी दशाके वर्ष होते हैं, और जो ग्रह कारकग्रहकरके युक्त हों उनकी दशाके वर्षभी कारककी दशाके वर्षोंकी तुल्यही होवे हैं. अन्य ग्रहोंकी दशाके वर्ष लानेकी रीति यह है कि—जिस स्थानमें अन्य ग्रह स्थित हो उस स्थानसे कारकग्रहपर्य्यन्त जितनी राशिसंख्या होय, उतने वर्षही उस ग्रहकी दशाके होते हैं, किन्तु गणना यहाँ विषम समपदके अनुसार होती है, आशय यह है कि, जो ग्रह विषमपदकी राशिके विषे स्थित होय उस राशिके स्थानसे क्रमसे (सीधी) गणना और जो ग्रह समपदकी राशिके विषे स्थित होय उस राशिके स्थानसे व्युत्क्रमसे (उलटी) गणना होती है ॥ १३ ॥

अब फल कहते हैं—

स्वामिबलफलानि च प्राग्वत् । १४ ।

अर्थ—दशाओंके स्वामी जो राशि और ग्रह उनके बल और फल पूर्वोक्त रीतिके अनुसारही जानना ॥ १४ ॥

अब मण्डूकदशा कहते हैं—

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयो मण्डूकस्त्रिकूटः । १५ ।

अर्थ—चर-स्थिर-द्विस्वभाव. इन तीनोंमें होनेके कारण अथवा केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम, इन तीनोंमें होनेके कारण मण्डूकदशा त्रिकूट नामवाली कहाती है, यह मण्डूकदशा स्थूलादर्श वैषम्याश्रय कहिये स्थूल जो लग्न और आदर्श जो सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उससे आरम्भ होती है. यहां वृद्धोंने विशेष कहा है कि—

"वर्लिनः शुक्रशशिनोर्ज्ञेया मण्डूकदा दशा ।
पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत् ॥"

अर्थ—इसी अध्यायके चतुर्थपादके सप्तमसूत्रमें कहे चुके हैं ॥ १५ ॥

अब शूलदशाका फल कहते हैं—

निर्याणलाभादि शूलदशाफले । १६ ।

अर्थ—मारक राशिसे जो सप्तमराशि हो उससे प्रारम्भ करके शूलदशा लगती है ' शूलदशा ' यह नाममात्रका निर्देश है, रुद्रशूल, रुद्राश्रय, महेश्वरर्क्ष और मारकर्क्ष इत्यादि मारकोंकी अधिकतासे यह शूलदशा अनेक प्रकारकी होती है, और प्रत्येक राशिकी दशाके नौ ९ वर्ष होते हैं ॥ १६ ॥

अब विशेष विधियोंको त्याग कर सम्पूर्ण दशाओंके एकरीतिसे दशारम्भमें वर्ष लानेकी विशेषरीति कहते हैं—

पुरुषे समाः सामान्यतः । १७ ।

अर्थ—सम्पूर्ण दशाओंके विषे यदि आरम्भराशि विषम होय तौ सामान्यतः कहिये उस राशिसेही दशा लगती है, और वर्षभी प्रत्येक दशाके नौ ९ होते हैं, और यदि आरम्भराशि सम होय तौ आरम्भराशि से जो सप्तम राशि उससे लेकर प्रत्येक दशा नौ ९ वर्षकी होतीहै । और विषमसमपदके अनुसार क्रमव्युत्क्रमगणना होतीहै ॥ १७ ॥

अब नक्षत्रदशा कहते हैं—

सिद्धा उडुदाये । १८ ।

अर्थ—नक्षत्रापूर्दायके विषे अर्थात् विंशोत्तरी अष्टोत्तरी

आदि दशाओंके विषे वर्षसंख्या अन्य बृहत्पाराशरीआदि जातकग्रन्थोंके अनुसार ग्रहण करना चाहिये ॥ १८ ॥

अब योगार्द्धदशा कहते हैं—

जगत्तस्थुषोरर्द्धं योगार्द्धे । १९ ।

अर्थ—योगार्द्धदशाके विषे पूर्वोक्त जगत् कहिये चर-दशा और तस्थिवान् कहिये स्थिरदशा इन दोनों दशाओंके वर्षोंको जोड़कर आधा करनेसे जो संख्या हो वही योगार्द्धदशाके वर्ष होते हैं ॥ १९ ॥

अब योगार्द्धदशाके आरम्भकी राशि कहते हैं—

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयन्तत् । २० ।

अर्थ—लग्न बलवान् होय तौ लग्नसे योगार्द्धदशा लगतीहै, और सप्तम बलवान् होय तौ सप्तमसे योगार्द्धदशाका आरम्भ होता है, और विषमपद होय तौ क्रमसे तथा समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है, स्त्रीकी दशा बलवान् सप्तमसे लगती है, और पुरुषकी दशा लग्न और सप्तममें जो बलवान् हो उससे लगती है ॥ २० ॥

अब दृग्दशा कहते हैं—

कुजादित्रिकूटपदक्रमेण दृग्दशा । २१ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि उससे आरम्भकरके त्रिकूटपदके क्रमसे दृग्दशा होतीहै, अर्थात् लग्नसे नवमस्थानमें जो राशि स्थित हो प्रथम उस राशिकी दशा होती है, तदनन्तर वह राशि जिस राशिको देखती हो उसराशिकी दशा होती है, तदनन्तर लग्नसे दशमराशिकी दशा होती है, तदनन्तर वह लग्नसे दशमराशि जिस राशिको देखता हो

उस राशिकी दशा होती है, और तदनन्तर लग्नसे जो ग्यारहवाँ राशि हो उसकी दशा होती है, तदनन्तर उस लग्नसे ग्यारहवें राशिकी जिस राशिके ऊपर दृष्टि हो उस राशिकी दशा होती है इस दशाकाही दृग्दशा नाम है, इस दृग्दशाके विषेभी प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होतीहै ॥२१॥

अब विषम समपदके भेदसे गणनाका क्रम कहते हैं—

मातृधर्म्मयोः सामान्यं
विपरीतमोजकूटयोः । २२ ।
यथासामान्यं युग्मे । २३ ।

अर्थ—चरराशिमे पञ्चम और एकादशस्थानकी गणना क्रमसे सीधी होती है और स्थिरराशिमे पञ्चम तथा एकादशस्थानकी गणना व्युत्क्रमसे (उलटी) होती है, और द्विस्वभावराशिमे तौ क्रम और व्युत्क्रम दोनोंसे होती है, परन्तु यहाँ पञ्चम और एकादशका सम्बन्ध नहीं है; इसकारण यहाँ दृष्टिका क्रम ग्रहण करते हैं, आशय यह है कि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादि स्थानोंमें यदि चर राशि स्थित हो तौ उस राशिमे क्रमसे गणना करके अष्टम, पञ्चम, और एकादशस्थान दृग्दशाका होता है, और यदि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादिस्थानोंके विषे स्थिर राशि स्थित होय तौ उस राशिसे व्युत्क्रमरीतिसे गणना करके षष्ठ, पञ्चम, और एकादशस्थान दृग्दशाके योग्य होता है, और यदि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादिस्थानोंके विषे द्विस्वभाव राशि स्थित होय तौ उसमें इतना विशेष होता है कि यदि विषम द्विस्वभावराशि स्थित होय तौ उस राशिसे क्रमरीतिसे गणना करके सप्तम, चतुर्थ, और दशमस्थान दृग्दशाके योग्य होता है

और यदि सम द्विःस्वभाव राशि स्थित होय तौ उस राशिसे व्युत्क्रमरीतिकी गणना करके सप्तम, चतुर्थ, और दशम-स्थान दृग्दशाके योग्य होता है, यहाँभी प्रत्येक राशिकी दशाके नौ २ वर्ष होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ त्रिकोणदशाका स्वरूप दिखाते हैं—

पितृमातृधर्म्मप्राण्यादिस्त्रिकोणे । २४ ।

अर्थ—लग्न और पञ्चम तथा नवम इन तीनोंमें जो प्राणी कहिये बलवान् हो उससे आरम्भकरके त्रिकोणदशा लगती है, परन्तु विशेष यह है कि यदि स्त्रीका जन्म होय तौ व्युत्क्रमरीतिसे और पुरुषका जन्म होय तौ क्रमसे, अपने स्थानसे लेकर जिस स्थानमें अपना स्वामी स्थित हो उस स्थानपर्य्यन्त गणना करनेसे जो संख्या हो, उतने वर्ष प्रत्येक राशिकी दशाके होते हैं यही वृद्धकारिकामें लिखा है ॥ २४ ॥

अब पाकभोगराशियोंको दिखातेहुए त्रिकोणदशाका फल कहते हैं—

तत्र वाह्याभ्यां तद्वत् । २५ ।

अर्थ—द्वार और बाह्यराशियोंके विषे जिसप्रकार फल कहा है, तिसीप्रकार इस त्रिकोणदशाके विषेभी जानना सोई वृद्धिकारिकामें कहा है—

"तदिदं चरपर्य्यायस्थिरपर्यायपोर्द्वयोः ।
त्रिकोणाख्यदशायाञ्च पाकभोगप्रकल्पने ॥
पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोऽन्यथा"

अर्थ—चरदशाके विषे, और दशाके विषे, तथा त्रि-

कोणनामक दशाके विषेभी पाक (द्वार) भोग (बाह्य) राशियोंके फलके अनुसार फल होता है, वह फल यह है कि यदि पाकभोगराशि पापग्रहोंकरके युक्त होय तौ देहमें पीड़ा और मनमें व्यथा होती है, और यदि शुभग्रहोंकरके युक्त होय तौ शुभफल होता है, तिसीप्रकार चरदशा स्थिरदशा और त्रिकोणदशाके विषेभी जानना ॥ २५ ॥

अब तिन तिन कारकोंसे तिन तिन स्थानोंका फल कहतेहैं—

धासगैरिकात्पत्नीकरात्कारकैः फलदेशः२६

अर्थ—सप्तम, तृतीय, प्रथम, और नवम. इन कारकोंसे फलका विचार करै, इसका तात्पर्य यह है कि सप्तमस्थानसे स्त्रीका विचार करै, तृतीय स्थानसे लघुभ्राताका विचार करै, प्रथमकारकसे अपना विचार करै, और नवमकारकसे पिताका तथा धर्म्मका विचार करै ॥ २६ ॥

अब नक्षत्रदशा कहते हैं—

ताराकांशे मन्दाद्यो दशेशः । २७ ।

अर्थ—जन्मदिनके विषे जो चन्द्रमाका नक्षत्र हो, उस नक्षत्रकी सर्वर्क्षरीति करके जो घटिका (दण्ड) हों उनको बारह स्थानमें विभाग करके प्रथमभागसे लेकर बारहो भाग क्रमसे बारहो राशियोंके होते हैं, इस रीतिसे जन्मकालमें जिस राशिका भाग होय उस राशिसे प्रारम्भ करके नक्षत्रदशा लगतीहै, यहांभी पुरुष और स्त्रीके भेदसे क्रम और व्युत्क्रमरीतिकरके गणना होती है. यहां प्रत्येक राशिकी दशाके नौ ९ वर्ष ग्रहण करने चाहिये ॥ २७ ॥

अब तीनसूत्रोंकरके नक्षत्रदशाका फल कहते हैं—

तस्मिन्नुच्चे नीचे वा श्रीमन्तः। २८।

अर्थ—वह तारालग्नेश यदि अपने उच्च अथवा नीच स्थानमें स्थित होय तौ वह पुरुष लक्ष्मीवान् होते हैं॥२८॥

स्वमित्रभे किञ्चित्। २९।

अर्थ—और यह तारालग्नेश यदि अपने स्थानमें अथवा मित्रके स्थानमें स्थित होय तौ किञ्चिन्मात्र लक्ष्मी होती है ॥ २९ ॥

दुर्गतोऽपरथा। ३०।

अर्थ—और यदि वह तारालग्नेश शत्रुस्थानमें स्थित होय तौ पुरुष दुर्गत कहिये दरिद्र होता है ॥ ३० ॥

यथासंक्रमव्युत्क्रमौ। ३१।

स्ववैषम्ये साम्ये विपरीतम्। ३२।

अर्थ—यदि आत्मकारक वैषम्य कहिये विषमपद होय अर्थात् विषमपदके विषे स्थित होय तौ राशिके स्वभावके अनुसार क्रम और व्युत्क्रम जानने. अर्थात् यदि विषमपदके विषे विषम राशि होय तौ क्रमकरके और यदि विषमपदमें समराशि होय तौ व्युत्क्रमकरके अन्तर्दशा लगती है. समपदमें इससे विपरीत होता है. अर्थात् समपदमें समराशि होय तौ क्रमसे और समपदमें विषम राशि होय तौ व्युत्क्रमसे अन्तर्दशा लगती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शनौ चेत्येके। ३३।

अर्थ—और जिसप्रकार आत्मकारकसे अन्तर्दशाका

क्रम और व्युत्क्रम होता है. तिसीप्रकार शनैश्चरसेभी क्रम और व्युत्क्रम आदि जानना. ऐसा किन्ही आचार्य्योंका मत है ३३

अन्तर्भुक्त्यंशयोरेतत् । ३४ ।

अर्थ—इकतीसवें सूत्रमें स्वपद ग्रहण करा है, इस-कारण कारकान्तर्दशा और कारकोपदशा आदिके विषेभी यही रीति जानना ॥ ३४ ॥

अथ दशाका फल विशेष कहते हैं—

शुभदशा शुभयुते धाम्न्युच्चे वा । ३५ ।

अर्थ—जो राशि शुभग्रहकरके युक्त होय तो उस राशिकी दशा शुभ होती है, और जिसराशिके विषे अपने उच्चस्थान-नमें स्थित ग्रह स्थित हों तथा जिस राशिका स्वामी अपने स्थानमें स्थित हो उस राशिकीभी दशा शुभ होती है३५॥

अन्यथाऽन्यथा । ३६ ।

अर्थ—और जिस राशिका उच्चग्रह आदिसे सम्बन्ध नहीं होय उस राशिकी दशा सम होती है अर्थात् न शुभ होती है, और न अशुभ होती है,और जिस राशिका पाप नीचस्थ आदि ग्रहोंसे सम्बन्ध होय उसराशिकी दशा अशुभ होती है ॥३६॥

सिद्धमन्यत् । ३७ ।

अर्थ—और जो वक्तव्य विषय इस ग्रन्थमें नहीं कहा है, वह अन्य जातकशास्त्रके ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है ॥३७॥

इति श्रीपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डित-
रामस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयसूत्रदर्पण-
शास्त्रभाषाटीकायां द्वितीयाध्याय-
स्य चतुर्थः पादः समाप्तः ।४॥

श्रीः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ राजजनिताभ्यां योगे योगे लेयान्मेपाधिप ॥ १ ॥ उच्चनीचस्वांशवती तादृशदृष्टिश्च शुभमातृदृष्टे यदि महाराजः ॥ २ ॥ लेयलाभयोः परकाले ॥ ३ ॥ लाभलेयाभ्यां स्थानगः ॥ ४ ॥ तत्र शुक्रचन्द्रयोर्यानवन्तः ॥ ५ ॥ तत्र शनिकेतुभ्यां गजतुरगाधीशः ॥ ६ ॥ शुक्रकुजकेतुषु स्वभाग्यदारेषु स्थितेषु राजानः ॥ ७ ॥ पितृलाभधनप्राणयोश्च ॥ ८ ॥ पत्नीलाभयोः समानकालः ॥ ९ ॥ भाग्यदारयोर्ग्रहयुक्तसमानेषु सांप्रतः ॥ १० ॥ तत्र उच्चे करसंख्या राशां च ॥ ११ ॥ पितृधर्मयोर्लेयलाभयोर्गुरौ चंद्रशुभदृग्योगे मण्डलान्तः ॥ १२ ॥ तत्र बुधगुरुदृग्योगे युवजो वा ॥ १३ ॥ तस्मिन्नुच्चे नीचे पितृलाभयोः श्रीमन्तः ॥ १४ ॥ स्वभावनाथाभ्यां शुक्रचन्द्रदृग्योगयोः ॥ १५ ॥ तत्र शुभवर्गेषु श्रीमन्तः ॥ १६ ॥ दारस्थलयोश्चन्द्रगुरौ ॥ १७ ॥ शूले चन्द्रे रिःफगुरौ धनेषु शुभेषु राजानः ॥ १८ ॥ पत्नीलाभयोश्च ॥ १९ ॥ एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥ २० ॥ लेयलाभश्चन्द्रेगुरौ शुभदृग्योगे महान्तः ॥ २१ ॥ लाभश्चन्द्रेऽपि ॥ २२ ॥ पापयोगाभावे शुभदृग्योगिनि च

॥ २३ ॥ अत्र शुभदृग्योगे राजप्रेष्यः ॥ २४ ॥ शुभवर्जेषु त्रिकोणकेंद्रेवा ॥ २५ ॥ स्वांशयोगे राजवंशः ॥२६॥ उच्चांशे तादृशदृष्टिश्च राजा (राज वंश्यो) वा ॥ २७ ॥ अशुभदृग्योगान्न चेन्नरेन्द्र ॥ २८ ॥ पंचमांशपदेपि समेषु शुभेषु राजानो वा ॥ २९ ॥ स्वलेयमेपाभ्यां राजचिह्नानि ॥ ३० ॥ इत्युपदेशसूत्रे तृतीये प्रथमःपादः ॥ १ ॥ यन्नजनेशाभ्यां स्वकारकाभ्यां निधनम् ॥ १ ॥ निधनं लेयलाभयोः प्राणि ॥ २ ॥ गुरौ केन्द्रे मन्दाराभ्यां दृष्टे शनिभोगहेतौ कक्ष्यापवादः ॥३॥ रिपुरोगयोश्चन्द्रे ॥४॥ स्वभावगैश्च ॥५॥ रोगतुङ्गयोर्वा ॥६॥ तत्र शनौप्रथमम् ॥७॥ राहौ द्वितीयम् ॥८॥ केतोस्तृतीयं निधनम् ॥९॥ तत्तु त्रिकोणेषु ॥१०॥ चरे प्रथमम् ॥११॥ स्थिरे मध्यमम्॥१२॥ द्वन्देऽन्त्यम्॥१३॥एवं चरस्थिरद्वन्द्वचराभ्याम्॥१४॥ स्वपितृचन्द्राः ॥१५॥ तत्र शनिकक्ष्यान्हासः ॥१६॥ रिपुषष्ठाष्टमयोश्च ॥ १७ ॥ प्रथममध्यमयोरन्त्यमध्यमयोर्वा ॥ १८ ॥ शुभदृग्योगान्न ॥१९॥ पितृलाभेशयोरस्यैव योगे वा ॥२०॥ अप्रसङ्गवादात्प्रामाण्यं रोगयोः प्राणिसौरदृष्टियोगाभ्याम् ॥२१॥ द्वारबाह्ययोरपवादः ॥ २२ ॥ द्वारे चन्द्रदृग्योगान्न ॥ २३ ॥ केवलशुभसम्बन्धे बाह्ये च ॥ २४ ॥ लेयरोगक्रूराश्रयेऽपि ॥२५॥ रोगक्षेत्रिकोणदशाब्दे ॥२६॥ रोगनवांशदशाभ्यां निधनम्॥२७॥तत्रापि शनियोगे ॥२८॥ मिश्रे शुभयोगान्न॥२९॥लग्नेन्दोभावे स्वलाभयोर्भा-

वयोः क्रूरे रुद्राश्रयेऽपि॥३०॥नवापवादानि ॥३१॥
इनशुक्राभ्यां रोगयोः प्रामाण्यं निधनम् ॥ ३२ ॥
महेश्वरब्रह्मयोराद्यन्तयोः ॥ ३३ ॥ चरनवांशदशायां
निधनम् ॥ ३४ ॥ चित्तनाथाभ्यां रिपुरोगचित्तकर्म-
णि ॥ ३५ ॥ क्रूरग्रहेषु सद्योऽरिष्टम् ॥ ३६ ॥ शनि-
राहुचन्द्रयोगे सद्योऽरिष्टम् ॥ ३७ ॥ कोणाश्रयेषु स-
द्योऽरिष्टम् ॥३८॥ सर्वमेवं पापग्रहेषु च ॥३९॥ केव-
लरिपुरोगचित्तनाथाभ्याम् ॥४०॥ तत्रापि चित्तना
थापहारे ॥ ४१ ॥ इत्युपदेशसूत्रे द्वितीयः पादः॥ २ ॥
व्ययलाभयोः पदम् ॥१॥ पदभावयोश्चरे ॥ २ ॥ क्रा-
न्तराशौकर्मणि दुष्टं मरणं कर्मणि पापे राजाभ्यां य-
थासन्नुधे ॥ ३ ॥ दिनेदिने पुण्यम् ॥ ४ ॥ तत्र कर्मादि
॥ ५ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ६ ॥ चराचरयोर्विपरीतकाले
॥७॥ ततः कोशे ॥८॥ पत्नीदृष्टमात्रगुरुयुक्ते ॥ ९ ॥
पापदृग्योगे ॥१०॥ पाषाणमरणे॥११॥अत्रकेतुयुक्ते
॥१२॥दोषेण हननम्॥१३॥केतौ पापदृष्टौ वा॥१४॥
अत्रशुभयोगे ॥१५॥ मलिनभावे क्रान्तराशौ कर्मणि
दुष्टमरणम्॥१६॥क्रूराश्रये सर्वशूलादि॥१७॥राहुदृष्टौ
निश्रयेन ॥१८॥ राहुशनिभ्यां दुष्टबलादि ॥ १९ ॥
तत्रप्रतिबन्धः ॥२०॥ कुजकेतुभ्यां नित्यं च ॥२१॥
वाशीयोग्यफूलदे (?) ॥ २२ ॥ मृत्युरोगाभ्यां राहु-
चन्द्राभ्यां यथास्वं मृत्युः ॥ २३ ॥ अत्र भावकरादि
॥ २४ ॥ तुरगवृषवर्गे ॥२५॥ अत्र कुजास्फोटकादि-
कुण्डलधरश्च ॥२६॥ रत्नाकरयोगे ॥ २७॥ कालद-

ण्डान्मरणम्॥२८॥ शेषा भुजङ्गादि॥२९॥कीटवृषवृश्चिकांशे॥३०॥रोगमात्रदृष्टयोर्भावे मूषकादित मृतिः ॥३१॥ तत्रमन्दे ॥३२॥ विषपानादि ॥ ३३ ॥ सौम्यदृष्टयोगाभ्यां मण्डूकभेदादि ॥३४॥ स्वांशग्राह्याद्र्णनामभिः ॥३५॥ लेयान्मृत्युः ॥ ३६ ॥ चले मृत्युः ॥३७॥भाग्ये दण्डात्॥३८॥ कर्मे विषभक्षात्॥३९॥ दारे ज्वरभयम्॥४०॥ मातरिशत्रुहतः ॥ ४१ ॥ शनौ रिपु भयम् ॥४२॥ लाभेकुष्ठरोगः ॥ ४३ ॥ विषूचीजलरोगादि देहे ॥४४॥ धने खड्गादौ ॥४५॥ निरय दुर्मरणम्॥४६॥तत्र रवियोगे रिपुशस्त्राग्निभयम्॥४७॥ चन्द्रेण कूपे ॥४८॥ कुजेन व्रणस्फोटादि॥४९॥बुधेन वृक्षपर्वतादयः ॥ ५० ॥ गुरुणा स्ववैषम्येरौ पावकः शुक्रेण शुक्रमेहात्॥५२॥शनिना विषभक्षणादि ॥५३ राहुकेतुभ्यां विषसर्पलोष्टबन्धनादिभिः॥५४॥शनिराहुभ्यां राहुणादण्डादि॥५५॥तत्र गुरुराहुभ्यामभिचारादि ॥ ५६ ॥ तत्र गुरुशनिभ्यां दृष्टेयथास्वनाशः ॥५७॥स्वत्रिंशांशे कौलकाफलरोगादि ॥५८॥ ललाटं प्रथमम् ॥ ५९ ॥ केशं द्वितीयः ॥ ६० ॥ बधिरं तृतीयः ॥६१॥ चतुर्थोऽनेत्रे ॥ ६२ ॥ सिंहादौ पञ्चमे ॥६३॥ षष्ठं जिह्वाग्रे ॥६४॥ पूर्वषष्ठे राहुकेतुभ्यां स्वजिह्वादि॥६५॥तत्र शनिमान्दिभ्यां गलद्वादि ॥६६ तत्र कुजेशोषः ॥६७॥ लाभांशे मरणम् ॥६८॥ तत्र रवौ प्रतिबन्धः ॥६९॥ कौन्तायुधघनौ रोगे ॥७०॥ सायकेधनम्॥७१॥अशनिहतकाये॥७२॥मार्गे मार्गे

रिपूणा वैरिवर्गश्च स्ववैषम्ये रिपुः ॥७३॥ क्रूराश्रयत्र-
ले रिपुहतः ॥७४॥ शन्यारफणिवर्गाद्यैः ॥७५॥भावे-
शाक्रान्तराशिस्थः ॥ ७६ ॥ रवियुक्तदृष्टे प्राथमिकः
॥७७॥ तत्र चन्द्रात्रिश्रयेनाकुजेन ज्ञातिभ्यः ॥७८॥
तत्र शनौ मृत्युवादाम्रिकरणश्च॥७९॥स्वांशेऽपि ८०
अन्यतरांशश्च ॥ ८१ ॥ नीचाश्रये विपरीतम् ॥८२॥
तत्र शनौ रूपे ॥८३॥विषभक्षणादि ॥८४॥ तनुतनौ
दण्डहरम्॥८५॥तत्र भावविशेषः ॥८६ ॥ (?) अघ-
शेवनिधनं ॥८७॥ मातापित्रोर्द्वितीयः ॥८८॥ ज्ञा-
तिवर्गभ्रात्रादिस्तृतीयः ॥८९॥ कलत्रं चतुर्थे ॥९०॥
पुत्रंपञ्चमम् ॥९१॥ शत्रुवर्गे षष्ठम् ॥९२॥ तत्रपापानां
सन्निकृष्टम्॥९३॥जनने॥९४॥लाभे स्त्रिया विपत्तिः
॥९५॥ भावे स्वकर्मचिन्तांशात्स्वांशे निधने-निधनम्
॥९६॥ स्वभूच्चात्पतनम् ॥९७॥ शूले मृतिः ॥९८॥
धनेन ज्ञानवान्मरणम् ॥ ९९ ॥ नयने ग्रहणीरोगादि
॥१००॥ शूले शत्रुमरणम् ॥१०१॥ उच्चे ग्रहभातिः
॥२॥ तत्र रविशनिभ्यामोजे कूटराशौ युग्मे निर्णयः
॥३॥ धनसुखाभ्यां पादरोगः ॥४॥ तनुविक्रमाभ्या-
मङ्गुलिरोगः ॥५॥ तत्र केतुना अंगहीनश्च॥६॥तत्र
पापदृष्टे पादहीनः ॥७॥ अथबलानि ॥८॥ प्राणिनि
शुभयुक्ते ॥ ९ ॥ राशिबलभागे ॥ १० ॥ चरपर्यायेन
॥ ११ ॥ शुभदृष्टे पादहीनः ॥१२॥ शुभदृष्टित्रिशूले
॥१३॥अंशत्रिशूले वा॥१४॥भावकोणाभ्यां निसर्ग-
तः ॥१५॥ आश्रयतोबलिष्ठः ॥ १६ ॥ यादिभराशौ

पितृलाभयोः ॥१७॥ स्वकर्मभेदेन ॥ १८ ॥ मृर्तित्वे परिपाताभ्यां जघन्यायुषि तत्रपरिपाके ॥ १९ ॥ एवं निधनं मातापित्रोः ॥२०॥ भूम्यंशश्चनिवृत्तिकारकः ॥२१॥ नायान्तसंज्ञाः स्युः ॥२२॥ कर्मस्थाचरपर्याये ॥२३॥ भाग्यदारयोः स्थिरोभयोः॥२४॥भाग्यकारकाभ्यांमङ्गलपदम् ॥२५॥ मृत्युः मृत्युपि ॥२६॥ अन्यैरन्यथा ॥ २७ ॥ मृतमन्यत् ॥ २८ ॥ इत्युपदेशे आयुर्दायापवादे तृतीये तृतीयः पादः ॥३॥ पुनः पदः पदे ॥१॥ उपग्रहयुक्ते श्रीमन्तः ॥२॥ आधानपितुर्लेग्नेपम॥३॥त्स्यात् कर्मणि पित्रोः॥४॥पुनः पदउत्तरयोः ॥५॥ पदाभ्यांभृगुसौम्यव्यतिरिक्ते॥६॥दिनकरे लाभेयोनिसंज्ञाः स्युः (?) ॥ ७ ॥ मिथानुपपत्तिः ॥८॥ तत्र पाककर्म॥९॥स्वकर्मन्याग्रश्च ॥१०॥ दिनकरत्रिकोणेलाभपदे गर्भसंप्लवे ॥ ११ ॥ तत्र गर्भपाते ॥१२॥रविकेत्वंशे शुक्रशोणितौ ॥१३॥ गुरुत्रिंशांशे ॥१४॥ चन्द्रदृग्योगे ॥१५॥ सुकलिप्ववयोः ॥१६॥ शुक्रेरतौ ॥ १७ ॥ वर्णपरिपाकम् ॥१८॥ यस्याधानं चन्द्रदृग्योगे ॥१९॥ यथा आधानपरिपाके च चन्द्रबुधभृगुयोगाभ्यामाधानपरिमिते ॥२०॥ सुवर्णारणिसंयोगे॥२१॥शनिचन्द्राभ्यां नाभेरधः ॥२२॥ गर्भवायुपरिवृन्ते ॥ २३ ॥ तत्र केतुनापुष्करसजात्यादिकेत्वं तम् ॥२४॥ ग्रहानतिरेतः ॥ २५ ॥ अन्ययोनिगर्भेन्वजः ॥२६॥ राहुचन्द्राभ्यांवीरतमः॥२७॥अर्वोरोपपत्तिः कर्मणि पाके एवंगर्भनिर्णयं ॥२८॥ स्या-

नाद्यैः स्वांशगश्च ॥२९॥ यथा धर्मशीले ॥३०॥ स्वांशग्रहैर्नीचउच्चयोः ॥ ३१ ॥ क्रियमेषलग्नेषु ॥ ३२ ॥ अथ रविप्राणाः ॥ ३३ ॥ नैसर्गिकबलेष्वभियोगशूल इह जायते ॥३४॥ पुंपुमान्॥३५॥बाण इति ॥३६॥ अत्रोदाहारः ॥३७॥ केतुशनिभ्यां रक्तप्रदरः ॥३८॥ शनौ पातयोगे कृष्णवर्णः॥३९॥शनिशुक्राभ्यां श्यामवर्णः ॥४०॥ गुरुशशिभ्यां गौरवर्णः ॥४१॥ शनिनबुधाभ्यां नीलवर्णः ॥४२॥ शनिकुजाभ्यां रक्तसुवर्णः ॥४३॥ शनिचन्द्राभ्यां श्वेतवर्णः ॥४४॥ स्वांशवशाद्गौरनीलादीनि ॥ ४५ ॥ तथाप्युदाहरन्ति ४६ रेतः सिश्चन्प्रजाः प्रजनयमिति विज्ञायते ॥४७॥ चेरे पापदृग्योगे पुत्रनाशः ॥४८॥ शुक्रदृग्योगे पुत्रलाभः ॥ ४९ ॥ पापशुभदृग्योगाभ्यां प्रथमवर्णक्रमेण ह्रासावृत्तिः ॥ ५० ॥ यन्नवभागे नवांशाभ्यां संख्यावृद्धिः ॥५१॥ बीजयुगबलयोर्बिन्दुपतनकाले यमला याम्यंतः शुभपापयोश्चरस्थिरयोरर्ध्वं तोतादिकनेत्रविक्षोतोष्ठनासिकमुखकर्णकेशदन्तपटलपादाङ्गहीनकुब्जबधिरमूलांगोपांगसुशिरकेशावर्तचक्रबीजविपर्यासकुनखीवृषोन्नतनृहनाभिनेत्रःपार्श्वदृष्ट्योरन्धकुब्जवामनस्त्वस्वरनीचस्वरहीनस्वरेत्यादिष्वपिपितृमात्रोर्नलानि ॥५२॥एवमृक्षाणां बलानि ॥५३॥ स्वपितृभाग्ययोः परिपाककाले ॥ ५४ ॥ इति तृतीयाध्यायोगर्भवर्णननिर्णयो नाम चतुर्थः पादः समाप्तश्चाध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पितृदिनेशयोः प्राणी देहः॥१॥लाभचन्द्रयोः प्राणि-
हृदयम्॥२॥लग्नचन्द्रयोः प्राणिशिरः॥३॥भाग्यच-
न्द्रयोः प्राणिमुखम् ॥४॥ कामचन्द्रयोः प्राणी कण्ठः
॥५॥दारचन्द्रयोः प्राणीबाहुः॥६॥मातृचन्द्रयोः प्रा-
ण्युदरम्॥७॥ततश्चन्द्रयोःप्राणिजघनम् ॥८॥ लाभच-
न्द्रयोः प्राणी पृष्ठः ॥ ९ ॥ दिनचन्द्रयोः प्राणी गुदः
१० धनचन्द्रयोः प्राणी पादौ ॥११॥ रिःफचन्द्रयोः
प्राणी नेत्रे ॥१२॥ शूलचन्द्रयोः कर्णयोः प्राणी कर्णौ
॥ १३ ॥ रौप्यचन्द्रयोः प्राणी नासिके ॥ १४ ॥ एवं
द्वादशभावानाम्॥१५॥ प्राणिबलानि ॥१६॥ अप्रा-
ण्यपि पापदृष्टः॥१७॥प्राणिनि शुभदृष्टः॥१८॥तच्च-
न्द्रावे जन्मसूचितम् ॥१९॥ आजन्मादिवपुःपु ॥२०॥
पित्रोः प्राक्काले॥२१॥शरमेव माता पितरौ जनयतः
॥१२॥अशोणितो क्लीबश्च ॥ २२ ॥ एवंभावविचारः
॥२४॥अङ्कुशाभ्यां तु॥२५॥वर्णभेदाश्रयेण ॥२६॥
जीवेन्दुबुधादयः॥२७॥ब्राह्मणश्चरविःकुजः क्षत्रः २८
शनिःशूद्रश्च॥२९॥राहुर्दूरजातिः॥३०॥ केतुश्चाण्डा-
लः ॥३१॥ वर्णभेदेन पुत्रलाभाभ्यां मृगवर्णं ॥३२॥
आसुरत्रयं च॥३३॥यदि पापत्र॥तुल्यं तत्र रमणीजा-
लः॥३४॥सुरकेशानि॥३५॥पडानि ॥३६॥ शनि-
राहुकेतुजेषु वैपरीत्यम् ॥३७॥ तालुतेफोफस्यशेवले
मित्रावरुणवले(?) ॥३८॥मृत्युना कैवल्यम् ॥ ३९ ॥
शृङ्गारेलाटः॥४०॥प्राणपाणौ चले॥४१॥मृत्युविचि

चे॥४२॥माधुरीकन्ये॥४३॥मांजिष्ठमृगे ४४ मानुपि कुरूपः॥४५॥मरणे माने॥४६॥मायामालिङ्गे॥४५॥ शुभेनकर्मणि पितृनियोजयोजयेत्॥४८॥पापे मातरि मिश्रे भ्रातरः४९शुभपापमिश्रे विरूपः॥५०॥मातुना शोकः ॥५१॥ चंद्रागुरुदृग्योगा निश्चयेनास्वमूर्तिपुरुषे कालरूपः ॥५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निवृत्तिकारकः ॥५३॥ शूलेशयोदीरयोशतोऽपंगुरुदृष्टेच॥५४॥इति उपदेशे चतुर्थे प्रथमःपादः॥१॥बलपदयोः प्राणी मारकःरुद्राश्रयेऽपि॥२॥भावेऽपिबलदृष्टान्तः ॥३॥ओजयुग्मयोः प्राणिबलम्॥४॥अभिपश्यंति भावानि ५ शुभान्यतराणिच६मत्पूकूश्लले नित्यविक्रमे बुधशुक्राभ्यान्दंतोष्ठपटलपार्श्वां॥७॥करकर्णाभ्योमृत्युचित्तयोर्विपरीतम् ८लग्नेऽपित्रिकभावेपि कामनाथयोरैक्ये यमलः ९कामनाथप्राणिनि शुभम् १० स्वनाथप्राणिनि च्युतयोः ॥११॥ भावयोः प्राणिनि कक्ष्याह्रासः ॥१२॥शुभयोगबलाच्चैवम्॥१३॥मिश्रे समाः प्राणिहीने विपरीतम् १४ समेनित्यम्॥१५॥भाग्ययोर्बलम् ॥१६॥गुरुचन्द्रयोधर्मधनैक्ये कर्मबले॥१७॥मेषे विपरीतम् १८ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः॥१९॥शुद्धस्व काले॥२०॥अनुकूललग्ने तुङ्गेनीचे॥२१॥भावबलाभ्यां तु ॥२२॥ केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजोजागुहा वीरिकेवलराहौतत्र निधनं ॥२३॥ भौमदृग्योगानिश्चयेन २४ तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिकोणराशिषु ॥२६॥ पदे चापदभावे स्वामिन इत्यम् २६

ह्स्वफलादिशुभवर्गयुतिशेषास्त्वन्ये ॥२७॥ मूर्तिरूपं च॥२८॥स्वकारकव्यतिरिक्तेषु ॥२९॥ भावनले च-न्द्राश्रयेऽपि॥३०॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम् ३१ भावशू-लदृष्ट्या च॥३२॥पितृनाथदृष्ट्यारोगाः॥३३॥पुत्र-पुत्रनाथदृष्ट्यादरिद्राः ३४ शूलनाथदृष्ट्या व्ययशी-लः॥३५॥रिपुनाथदृष्ट्या कर्म॥३६॥धननाथदृष्ट्या निरोगीच ॥३७॥माननाथदृष्ट्याप्रबलः॥३८॥दारे-शदृष्ट्या सुखिनः॥३९॥कामेशदृष्ट्याप्रध्वंसः॥४०॥ भाग्यनाथदृष्ट्या सुरूपः॥४१॥सर्वदृष्ट्याप्रबलः ४२ दारभाग्ये च॥४३॥वर्णपदाश्रयकोणेषु॥४४॥शुक्रे च ४५ कोणयोः शुभेषु मित्रभागपवर्गे ॥४६॥ केन्द्रत्रि-कोणयोः शुभेकालबलानि॥४७॥इत्युपदेशसूत्रे चतु-र्थेऽध्याये द्वितीयः पादः २ बुधशुक्रयोर्युग्मे स्त्रीजननं१ ॥२॥अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः॥३॥कालकाः ॥४॥ अनुलिप्ताश्च॥५॥द्विनाद्विचतुःसंख्यादि॥६॥ नवभा-गशेषे॥७॥आद्यंशके॥८॥ग्रहक्रमेण वर्णी॥९॥पुमान्पुं-प्रजः॥१०॥अन्ये स्त्रियः॥११॥क्लीबे पूर्वापरौ॥१२॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः॥१३॥नीचदारांशकः॥१४॥ आ-द्यादिस्ववर्णः ॥१५॥ मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः स्युः॥१६॥धात्वादिरूपवर्णेन१७स्वांशैश्चबलः १८ रविकुजौ रक्तौ॥१९॥बुधशुक्रौ श्यामौ॥२०॥कृष्णेत राः स्युः॥२१॥त्रित्रिभागेचरस्थिरोभयपर्याये॥२२॥ घटिकाषष्टिनिर्णये ॥ २३ ॥ अंशस्यैकस्यपंचघटिकाः ॥२४॥एवं द्वादशपंचस्युः विघटिकादिक्रमेण ॥२५॥

चे॥४२॥माधुरीकन्ये॥४३॥मांजिष्ठभृगे ४४ मातृपि
कुरूपः॥४५॥मरणे माने॥४६॥मायामालिङ्गे॥४५॥
शुभेनकर्मणि पितृनियोजयोजयेत्॥४८॥पापे मातरि
मिश्रे भ्रातरः४९शुभपापमिश्रे विरूपः॥५०॥मातुना
शोकः ॥५१॥ चंद्रागुरुदृग्योगा निश्चयेनास्वमूर्तिपुरुषे
कालरूपः ॥५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निवृत्तिकारकः
॥५३॥ शूलेशयोदीरयोशतोऽपंगुरुदृष्टेच॥५४॥इति
उपदेशे चतुर्थे प्रथमःपादः॥१॥बलपदयोः प्राणी मा-
रकःरुद्राश्रयेऽपि॥२॥भावेऽपिबलदृष्टान्तः॥३॥ओ-
जयुग्मयोः प्राणिबलम्॥४॥अभिपश्यंति भावानि ५
शुभान्यतराणिच६प्रत्पृक्शले नित्यविक्रमे शुभशुक्रा-
भ्यान्दंतोष्ठपटलपार्श्वाः॥७॥करकर्णाभ्यो मृत्युचित्त-
योर्विपरीतम् ८लग्नेऽपित्रिकभावेपि कामनाथयोरैक्ये
यमलः ९कामनाथप्राणिनि शुभम् १० स्वनाथप्राणि-
नि च्युतयोः॥११॥ भावयोः प्राणिनि कन्यान्हासः
॥१२॥शुभयोगबलाच्चैवम्॥१३॥मिश्रे समाः प्राणि-
हीने विपरीतम् १४ समेनित्यम्॥१५॥भाग्ययोर्बलम्
॥१६॥गुरुचन्द्रयोधर्मधनैक्ये कर्मबले॥१७॥मेषे वि-
परीतम् १८ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः॥१९॥शुद्धस्व
काले॥२०॥अनुकूललेये तुङ्गेनीचे॥२१॥भावबला-
भ्यां तु ॥२२॥ केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजोजानुहा
वीरिकेवलराहौतत्र निधनं ॥२३॥ भौमदृग्योगान्नि-
श्रयेन २४ तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिको-
णराशिषु ॥२६॥ पदे चापदभावे स्वामिन इत्यम् २६

ह्रस्वफलादिशुभवर्गयुतिशेषास्त्वन्ये ॥२७॥ मूर्तिरूपं च॥२८॥स्वकारकव्यतिरिक्तेषु॥२९॥ भावबले च-न्द्राश्रयेऽपि॥३०॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम्३१भावस्थ-लदृष्ट्या च॥३२॥पितृनाथदृष्ट्यारोगाः॥३३॥पुत्र-पुत्रनाथदृष्ट्यादरिद्राः ३४ शूलनाथदृष्ट्या व्ययशी-लः॥३५॥रिपुनाथदृष्ट्या कर्म॥३६॥धननाथदृष्ट्या निरोगीच ॥३७॥माननाथदृष्ट्याप्रबलः॥३८॥दारे-शदृष्ट्या सुखिनः॥३९॥कामेशदृष्ट्याप्रध्वंसः॥४०॥ भाग्यनाथदृष्ट्या सुरूपः॥४१॥सर्वदृष्ट्याप्रबलः ४२ दारभाग्ये च॥४३॥वर्णपदाश्रयकोणेषु॥४४॥शुक्रे च ४५ कोणयोः शुभेषु मित्रभागपवर्गे ॥४६॥ केन्द्रत्रि-कोणयोः शुभेकालबलानि॥४७॥इत्युपदेशसूत्रे चतु-र्थेऽध्याये द्वितीयः पादः २ बुधशुक्रयोर्युग्मे स्त्रीजननं१ ॥२॥अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः॥३॥कालकाः ॥४॥ अनुलिप्ताश्च॥५॥दिनादिचतुःसंख्यादि॥६॥ नवभा-गशेषे॥७॥आद्यंशके॥८॥ग्रहक्रमेण वर्णे॥९॥पुमान्पुं-ग्रहः॥१०॥अन्ये स्त्रियः॥११॥क्लीबे पूर्वापरौ॥१२॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः॥१३॥नीचराशिकः॥१४॥ सा-म्यादिस्ववर्णः ॥१५॥ मित्रमदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः स्युः॥१६॥चन्द्रादिक्रमवर्णेन१७स्वांशगेप्रबलः १८ रविकुजौ रक्तौ॥१९॥बुधशुक्रौ श्यामौ॥२०॥कृष्णेत-राः स्युः॥२१॥त्रिभागेचरस्थिरोभयपर्याये॥२२॥ घटिकाशद्विनिर्णय॥२३॥ अंशस्यैकस्यपंचघटिकाः ॥२४॥एवं द्वादशांशस्यः विघटिकादिक्रमेण

वा ॥१८॥ एतद्यागेविहीनस्तु निश्चिन्त्यः स्त्रीजातके ॥१९॥इति गुरुभ्यां वर्णः॥२०॥स्वपितृवर्णश्च॥२१॥
इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ॥३॥ गणेषु गुणरमणी॥१॥केन्द्रत्रिकोणेषु शुभवर्गेषु॥२॥अकारमन्दफलयोः पुमांश्च ॥३॥ चन्द्रबुधाभ्यां स्त्री च॥४॥ दृग्योगाभ्यामपि॥५॥यथानिर्हरणम् ॥६॥ रोगे पापे वैधवी पापदृग्योगा निश्चयेन॥७॥उच्चे विलम्बात् ८ नीचे क्षिप्रम्॥९॥मिश्रे मिश्रात्॥१०॥ चन्द्रकुजदृष्टौ निश्चयेन ॥११॥ आद्याआत्मजस्त्री॥१२॥कार्ये पापे कोणे वा ॥ १३ ॥ पापदृग्योगकाले वियोनिसंज्ञायां विधित्वादिति॥१४॥धात्वादिवर्णकाले॥१५॥भावपरिवेधनेन॥१६॥उच्चे स्वांशवर्गः॥१७॥अर्धांशेपश्वादियोनिसम्बन्धः॥१८॥मध्येमृगाः॥१९॥अन्त्येकीटकादयः॥२०॥एवमुभौ शुभलोके॥२१॥रविशुक्राभ्यां पापपूर्वम्॥२२॥अन्यैरन्यथा२३ अत्र शुभः केतुः ॥२४॥ पापदृग्योगात्र॥२५॥रविराहुशुक्राः ॥२६॥ गुरुश्चैककालादृग्योगमिति ॥२७॥ यथा चन्द्रम् २८ तत्र गुरुवर्गे स्वाम्यंशे च॥२९॥स्वेशभूमित्रनीचांशकश्च ॥३०॥ पूर्णेन्दुराह्वारान्तरालाश्च ॥३१॥ शुभवशुभदृष्टियुतः॥३२॥ अंशोमित्रभेदात्॥३३॥ स्वानन्दतुल्ये वा॥३४॥ वर्गेनवांशश्च ३५ तत्र ज्ञानाज्ञाने॥ ३६पुत्रमणिरमणी३७बुधकेतुर्वा३८शुभचन्द्राभ्याम्॥

इत्युपदेशसूत्रे वियोनिभे नामचतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः

इति चतुर्थाध्यायः॥ ४ ॥